www.emanjari.com

RNI Title Code: BIHBIL02442

मंजरी

स्त्री के मन की

अंक 23

वर्ष 2023

कुछ कही कुछ अनकही

स्त्री जीवन का दस्तावेज

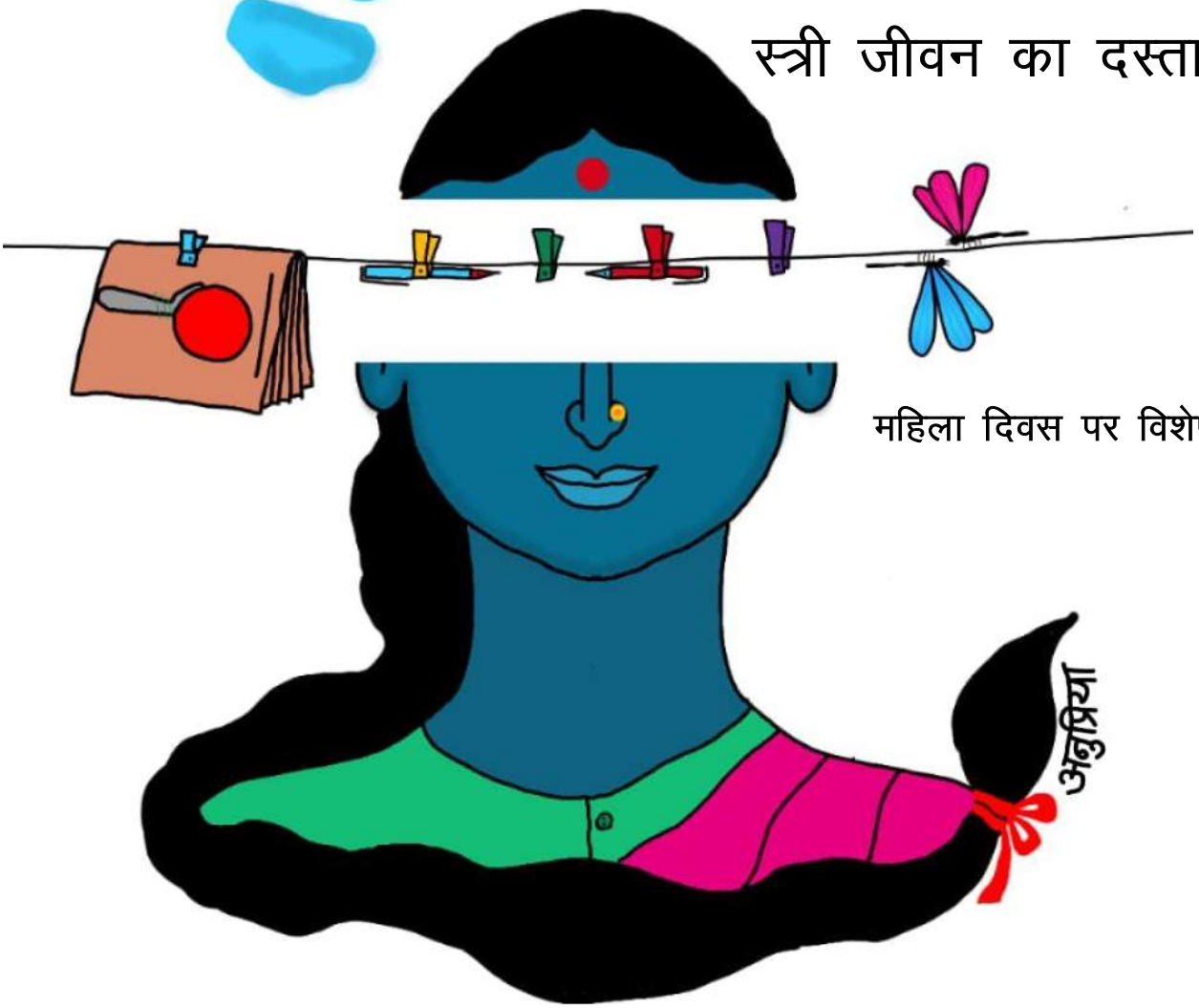

महिला दिवस पर विशेष

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी को. शिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवेदनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामा. जिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेहद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

हमारी बात

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र
पटना विवि

परामर्श

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
स्वतंत्र लेखिका एवं शोधकर्ता

सुजाता गुप्ता
लेखिका, कवयित्री एवं
अनुवादक

संपादकीय

तन के भूगोल से परे
एक स्त्री के मन की गाँठें खोलकर
कभी पढ़ा है तुमने
उसके भीतर का खौलता इतिहास

– निर्मला पुतुल

''बीसवीं सदी के अंतिम दो दशक में स्त्री रचनाकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से 'अनुभूति की प्रामाणिकता' को जिस रूप में अभिव्यक्त किया है, वह स्त्री लेखन को नया आयाम देता है।

– डॉ. वंशीधर उपाध्याय

आज की कहानियों और कविताओं में कौन सा परिवर्तन देखने को मिल रहा है, यह परिवर्तन किस सकारात्मक दिशा में है और यह स्त्री की मनःस्थिति को मजबूत करने में कितनी सफल होती नजर आ रही है, इन मुद्दों पर चर्चा होनी जरूरी है। आज की कहानियां केवल दुख और निराशा से भरी हुई नहीं हैं, बल्कि उनमें आशा की किरणें भी हैं जो स्त्री को नए ख्वाब बुनने के लिए प्रेरित करती हैं। आज की कहानियां स्त्री को ऐसी दुनिया में ले जाती है जहां सिर्फ उसका अपना जीवन है। इन संदर्भों में हमारे समय की कई महत्वपूर्ण लेखिकाओं की संवेदनशील रचनाएं मंजरी के हमारे इस अंक में प्रकाशित की जा रही हैं।

'कुछ कही, कुछ अनकही'– मंजरी के इस अंक को स्त्री जीवन के दस्तावेज के रूप में पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि इस अंक में स्त्री जीवन की मुकम्मल तस्वीर पेश करने की कोशिश की गई है।

भारतीय साहित्य में महिला पात्रों को केंद्रित कर बहुत से उपन्यास और कविताएं लिखी गई हैं, जिनमें से कुल 13 रचनाएं हम इस अंक में प्रकाशित करेंगे।

नीना श्रीवास्तव

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

आवरण चित्र

वरिष्ठ अतिथि कलाकार
अनु प्रिया

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612.2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

अनुक्रमणिका

संकल्पना .....

हमारी बात : संपादकीय .....

थीम पेपर: महिलाओं का लेखन ही एक विद्रोह है 1

एक है जानकी 4

स्त्रियां 7

प्राइवेट लाइफ..... 9

स्त्री का चेहरा..... 14

घूंघट 16

लामबंद औरतें..... 20

औरत का घर 22

औरत तो समुद्र होती है..... 25

सिंदूर 27

द्रौपदी 34

दादी–अम्मा..... 36

बाबा! मुझे उतनी दूर मत ब्याहना..... 44

बिबिया 47

ग्यारह बरस की मां 55

अनु प्रिया
(कलाकार/लेखिका)

सुपौल बिहार में जन्मीं अनु प्रिया जी के साठ से अधिक किताबों के आवरण एवं पत्र–पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्य अकादमी, राजकमल प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, अल्टरनोट प्रकाशन, अगोर प्रकाशन, प्रकाशन विभाग आदि से किताबों के आवरण पर निरंतर इनके द्वारा बनाये गए चित्र का प्रकाशन होता रहता है।

श्रोत

www.pinterest.com
www.google.com
www.singulart.com
pixels.com
www.hindikahani.hindi-kavita.com
www.shabdankan.com
thetricontinental.org
fineartamerica.com

थीम पेपर

महिलाओं का लेखन ही एक विद्रोह है

जहां भी दमन होता है, वहां दमित लोगों की एक भूमिगत दुनिया तैयार हो जाती है। और महिलाओं से ज्यादा दमन किसने झेला होगा। लिहाजा महिलाओं की भी एक भूमिगत दुनिया हो जाती है। पिछले 100 सालों में ही इस भूमिगत दुनिया की कुछ तस्वीरें हमारे सामने आ पाई हैं। हालांकि पिछले कुछ दशकों में महिलाओं ने अपनी इस भूमिगत दुनिया से पूरी तरह बाहर निकल कर पितृसत्ता की आंख में सीधे घूरते हुए उसे चुनौती दी है। और उसकी कीमत भी चुकाई है।

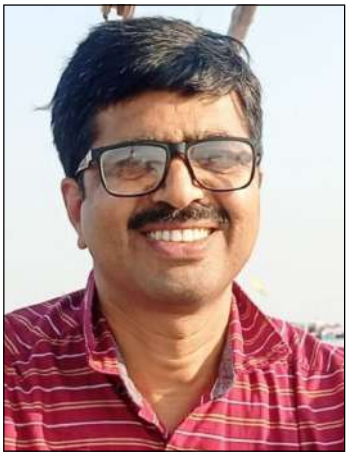

मनीष आजाद

(राजनीतिक–सामाजिक एक्टिविस्ट
विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक विषयों पर
स्वतंत्र लेखन तथा फिल्म समीक्षक)

'पितृसत्ता के किले की दीवारों में उसने खतरों से खेलते हुए यत्नपूर्वक कुछ झरोखे खोल लिए हैं और अपनी चेतना के बलबूते देखा है रीति रिवाजों का रूप, ऐसी कुरीतियों की तस्वीर, जिसमें स्त्री का तबाह जीवन दिखाई देता है। पुराने विश्वास अंधविश्वासों में ढल गए हैं, यह बात बड़ी आसानी से समझी जा सकती है। चेतना सम्पन्न स्त्री आज ऐसी ही चेतावनी बराबर दे रही है।'

–मैत्रेयी पुष्पा (खुली खिड़कियां)

कुछ अपवादों को छोड़ दें तो उपरोक्त पंक्ति 'महिला लेखन' पर एकदम फिट बैठती है। चाहे वह कविता हो, कहानी–उपन्यास हो या फिर आपबीती।

दरअसल भारत में महिलाओं का लेखन ही एक तरह का विद्रोह रहा है, ठीक उसी तरह जैसे भारत का दलित लेखन है। लिखने वाली मुस्लिम महिलाओं को 'हर्राफा' कह कर अपमानित किया जाता रहा है। 'हर्फ' का मतलब अक्षर होता है, और हर्राफा शब्द यहीं से आया है। इसी तरह हिन्दू औरतों को भी पढ़ने–लिखने के लिए अनेकों तरह से लगातार हतोत्साहित किया जाता रहा है।

जहां भी दमन होता है, वहां दमित लोगों की एक भूमिगत दुनिया तैयार हो जाती है। और महिलाओं से ज्यादा दमन किसने झेला होगा। लिहाजा महिलाओं की भी एक भूमिगत दुनिया हो जाती है। पिछले 100 सालों में ही इस भूमिगत दुनिया की कुछ तस्वीरें हमारे सामने आ पाई हैं। हालांकि पिछले कुछ दशकों में महिलाओं ने अपनी इस भूमिगत दुनिया से पूरी तरह बाहर निकल कर पितृसत्ता की आंख में सीधे घूरते हुए उसे चुनौती दी है। और उसकी कीमत भी चुकाई है।

महिलाओं ने अपनी इस भूमिगत दुनिया में अपनी यातना को साझा करके उसे एक नई दृष्टि में बदल डाला है।

मन्नू भंडारी लिखती हैं– ''यातना और करुणा हमें दृष्टि देती हैं।.....यातना के क्षणों में हम अपने भीतर होते हैं और वे हमारे अपने होते हैं।....ये क्षण ही मेरे प्रिय क्षण हैं और उनसे उपजी कहानियां ही प्रिय कहानियां।''

–मन्नू भंडारी ('मेरी प्रिय कहानियां' की भूमिका से)

अपनी इसी दृष्टि से वह हर उस चीज पर सवाल खड़ा करती है, जिसे पुरुषों की दुनिया में सहज और स्वाभाविक माना जाता है।

अनामिका अपनी इसी तीखी दृष्टि से सवाल उठाती हैं– ''अमीर खुसरो पुरुष थे, तभी तो आसानी से कह पाए ''चल खुसरो घर आपने! रैन भई चहुं देस! ('एक ठो शहरः एक गो लड़की')

एक औरत के लिए घर वही नहीं होता जो एक पुरुष के लिए होता है। अंशु मालवीय अपनी एक कविता में कहते हैं–''एक घर से दूसरे घर के बीच औरतें सदियों से तलाश कर रही हैं एक मुट्ठी जमीन।"

अनामिका 'घर' के भावनात्मक आवरण को हटाकर एक लाइन में इसके असली चरित्र को हमारे सामने उघाड़ कर रख देती हैं। वे लिखती हैं– ''वॉयलेंस बिगिन्स ऐट

होम।''

कभी किसी कवि ने कहा था कि दुनिया की सारी नदियां औरतों के रोने से बनी है। लेकिन जरूरी नहीं कि इस रोने का कोई ठोस कारण भी हो। अधिकांश पुरुष औरतों के रोने में अपनी ताकत देखते हैं।

उषा प्रियंवदा की यह पंक्ति देखिये– ''औरत रोते हुए कहती है, मैंने क्या कसूर किया है? चोरी की? झूठ बोला? क्या मैं दुष्चरित्र हूँ?.....तुमसे झगड़ा करती हूँ? तुम्हारा पैसा बर्बाद किया है? तुम्हारी बेइज्जती करती हूँ? तुम्हे खाना पकाकर नहीं देती?'' (शेष यात्रा)

यही कारण है कि शादी के बारे में भी जो राय पुरुषों की होती है, वही राय नई चेतना से लैस स्त्री की नहीं होती।

अल्पना मिश्र अपने खास अंदाज में कहती हैं– ''शादी का मतलब बिखरी हुई मूंगफली, टूटा हुआ कांच का गिलास और कील में फंसा मेजपोश का किनारा..'' (भीतर का वक्त)

मंजरी के इसी अंक में जसिंता केरकेट्टा की एक महत्वपूर्ण कहानी 'औरत का घर' है। इसमें जसिंता सामाजिक मूल्यों को पूरी तरह उलटते हुए 'चंदो' के रूप में कहती हैं कि जब मैं धंधे में थी तो मेरा अपने शरीर पर अधिकार था, लेकिन अब पत्नी के रूप में मेरी 'हां' और 'ना' का कोई मतलब नहीं है।

मंजरी के इसी अंक में अनामिका अपनी एक कविता में कहती हैं–
''हे परमपिताओ, परमपुरुषो,
बख्शो, बख्शो, अब हमें बख्शो!''

'असीमा भट्ट' की यह कविता एक नए तेवर के साथ महिला को पेश करती है– ''कायर बलात्कारी यह नहीं जानते, जिस आग से वे तुम्हें डरा रहे हैं, वह तुम अपने सीने में रखती हो और रोज फूँक मार कर उससे अपना चूल्हा सुलगाती हो।''

यहां तक कि इसी अंक में महादेवी वर्मा की कहानी 'बिबिया' के उस दृश्य को कौन भूल सकता है, जब बिबिया चिमटा खींच कर पति को दे मारती है।

यही कारण है कि सभी महिलाओं के अंदर एक ज्वालामुखी पल रहा है। वह कब बाहर आएगा, पता नहीं। लेकिन सचेत महिला रचनाकारों की रचनाओं में इस ज्वालामुखी की एक झलक जरूर मिल जाती है। यह पंक्ति देखिये– ''लड़की ने मजबूरी में अध्यापक को प्रणाम किया। अगर कोई इस छोटी सी लड़की के मन से पूछे तो यह कहेगी कि चूल्हे से चौला निकालकर इस अध्यापक को पीटते–पीटते खदेड़ने की इच्छा है उसकी।''– अल्पना मिश्र (भीतर का वक्त)

जाहिर है यह इच्छा यूं ही नहीं बनी है। इसके पीछे उस तथाकथित अध्यापक का वह घिनौना व्यवहार है, जिसका शिकार यह लड़की बनी है।

सच कहें तो महिला साहित्य समाज में एक स्वाभिमानी व्यक्ति की तरह सर उठा कर चलने की इच्छा का साहित्य है। लेकिन विडंबना यह है कि सर उठा कर चलने की परिस्थितियां अभी नहीं बनी हैं। इसी जद्दोजहद के बीच महिला साहित्य अपना आकार ग्रहण कर रहा है।

इस जद्दोजहद में 'नाकामियां' भी मंजिल तक पहुँचने का रास्ता बन जाती हैं। तभी तो हरजीत सिंह लिखते हैं–

''उसकी नाकामियों पर मुझे नाज है,
जिसकी कोशिश मुसल्सल उड़ानों की है।''

उषा किरण खान

पद्मश्री से सम्मानित हिंदी और मैथिली साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका डॉ उषा किरण खान को पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के सर्वोच्च साहित्य सम्मान भारत-भारती से भी नवाजा गया है। डॉ खान ने हिंदी के साथ-साथ मैथिली में भी दर्जनों उपन्यास व कहानियां लिखी हैं। इसके अलावा वह बाल साहित्य और नाटक लेखन के लिए भी जानी जाती हैं। मैथिली में लेखन के लिए डॉ खान को साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया है। 24 अक्तूबर, 1945 को दरभंगा के लहेरियासराय में जन्मीं डॉ उषा किरण खान के हिंदी में चार उपन्यास, पाँच कथा-संग्रह, साथ ही सौ से अधिक लेख एवं रिपोर्ताज (असंकलित), तीन पूर्णकालिक नाटक, दो बाल नाटक, कई नुक्कड़ नाटक, बाल उपन्यास एवं कथाएँ प्रकाशित एवं मंचित हुई हैं। उनकी कृतियों के लिए उन्हें राष्ट्रभाषा परिषद् बिहार के 'हिंदी-सेवी सम्मान', 'महादेवी वर्मा पुरस्कार' तथा 'राष्ट्रकवि दिनकर पुरस्कार' से भी सम्मानित किया जा चुका है।

उषा किरण खान

एक है जानकी

जानकी ऊँघने लगी थी। लुढ़कने से बाल–बाल बची! ''ऐ जीप वाले, क्यों तूफान की तरह रेड़ते जा रहे हो? अभी दाईजी गिर जाती'', जानकी के साथ आए सहायक कुंजा ने कहा।

जीप वाले ने कुंजा पर सर्व निगाह फेरी। किसी प्रकार का भाव उसके चेहरे पर नहीं था। जीप रोककर उतर गया। हाथ–पैर झटककर खड़ा हो गया, "बहुत विचित्र देहात है! कहीं चाय–पानी का खोखा भी नहीं है। थक गए भाई।''

"चलो, गाँव पर एक साथ नाश्ता–चाय करवा दूँगा। देर न करो," कुंजा ने आश्वस्त किया। जानकी दूरस्थ अस्तचलगामी सूर्य की लालिमा गौर से देख रही थी। मन कहीं अन्यत्र भटक रहा था। शहर की ओर जाने से पूर्व भैया नाराज थे– ''नहीं जानकी, तुम गवाही देने नहीं जाओगी। उस बदजात इंजीनियर को जाने दो जेल। घोर दुख और विपत्ति में तुम्हें छोड़ गया। हमने उसे कोई सजा नहीं दी। फिर यह चक्र चाल। जब स्वयं अपने जाल में फँस गया है तब पता चल रहा है न!''

जानकी ने भैया से तो नहीं, परंतु भाभी से कहा, "भाभी, इंजीनियर साहब ने मुझे नहीं रखा। पत्नी समझा ही नहीं। नए कानून के तहत वह बिना तलाक दिए विवाह कर नहीं सकते थे। शादी करनी थी, की। शायद भैया के डर से, शायद अन्य कारणों से भाड़े की औरत को खड़ा कर तलाक ले लिया। क्या बुरा किया?"

''बुरा नहीं किया? क्या कहती हैं आप?'' भाभी का स्वर तेज था। "ठीक ही तो कहती हूँ, भाभी। मैं सुंदर नहीं थी, देहाती थी। उन्हें नहीं भाई। में सुखी हूँ, आपके साथ जो हूँ।''

''वह तो है, परंतु स्वामी के बिना...''

''मान लीजिए, मैं विधवा हूँ।"

''मानने से कुछ नहीं होता।''

''क्या करेंगी?''

''उसको जेल भेजने का प्रबंध।''

''क्या जरूरत है? मेरे जाने से यदि उसका भला हो जाए तो आपको बुरा नहीं लगना चाहिए।''

''मुझको बुरा लग रहा है। आप मेरी बेटी की तरह हैं। मेरा कलेजा आपको देखकर फटता रहता है। ऊपर से यह अनर्थ। बंधन तोड़ते वक्त भी उसे आपकी जरूरत नहीं पड़ी। आज शिकायत हुई, नौकरी छिनने का खतरा हुआ कि आप उसे याद आ गई। नहीं दाईजी, आप न जाएँ तो ठीक रहेगा।''

जानकी के जेहन में इंजीनियर साहब की चिट्ठी का मजमून घूमने लगा–

उषा किरण खान

आदरणीय जानकी देवी,
सादर प्रणाम,

मैं अत्यंत लज्जित और दुखी अवस्था में आपको पत्र लिख रहा हूँ। आपके समक्ष मुँह भी नहीं खोल सकता। परंतु कहता नहीं हूँ तो बनता नहीं है। आपको पता होगा कि दस–बारह वर्ष पहले मैंने दूसरा विवाह कर लिया था। तीन संतानें हैं। सरकारी नौकरी में दो विवाह मान्य नहीं हैं। आपसे मुझे तलाक चाहिए था। मैं आपके परिवार की कृपा के बोझ से दबा हुआ था। संकोच और भय था। अतः आपसे आग्रह न कर सका। एक भाड़े की स्त्री को खड़ा कर, 'जानकी' नाम दे इजलास से तलाक ले लिया। विपत्ति कहाँ पीछा छोड़ती है। दुश्मन पीछे पड़ गए। सरकार के पास शिकायत हुई। अब आप ही मेरी नौकरी, इज्जत और तीनों बच्चों को बचा सकती हैं, वरना आत्महत्या के सिवा कोई उपाय नहीं है। आप स्वीकृति दें तो जीप भेज दूँ। आप आकर कृपया इन्क्वायरी वालों को यह बता दें कि तलाक के वक्त आप ही जानकी देवी इजलास में उपस्थित थीं।

– शुभेच्छु मोहन

जानकी के कलेजे पर हथौड़ी पड़ी। आह, वह तो सुना था कि विवाह कर लिया, बाल–गोपाल हैं; पर यहाँ तक नाता टूट चुका है, नहीं जानती। माथे का सिंदूर, सुहाग की चूड़ी अनचीन्हे–से लगे। आँसू सूख गए। देर तक स्तंभित–सी रही, फिर संदेशवाहक को कहा, ''तुम गाड़ी लेकर आओ, मैं चलूँगी।'' घर में भूचाल आ गया। भैया–भाभी, भतीजा–बहू सभी नाराज हो गए। जानकी का वचन अटल था। जानकी की सोच, "उन्हें मुझसे कोई मतलब ही नहीं तो मुझे क्यों हो? उन बच्चों का क्या दोष? पिता का पाप उन्हें नाहक भुगतना होगा। बिना किसी प्रतिदान के किया गया उपकार वास्तविक पुण्य फल देता है।''

अपने देहाती शृंगार में लैस जानकी जीप पर चढ़ गई। विष्णुपुरी सिल्क की साड़ी–ब्लाउज, काले घने केशों की लंबी चोटी, माथे पर बड़ी–सी बिंदी, कानों में सोने का फूल, गले में जई, सोने की चूड़ियाँ, कड़ा और अंगूठियाँ, शहर की ओर कभी–कभी सिनेमा देखने जाती है जानकी, बस अब जब से गाँव में बिजली आई है, टेलीविजन पर ही देख लिया करती है।

जाँच कमेटी के सामने बिना किसी इतस्ततः के जानकी ने कह दिया, ''मैं ही थी तलाक देने वाली जानकी।''

''सच–सच बताइए, देवीजी?'' जाँच कमेटी थी।

''झूठ क्यों बोलूँगी?'' तेवर में बोली जानकी।

''क्यों दिया तलाक?'' जाँच कमेटी थी।

"मन नहीं मिला था, पुराना किस्सा मत चींथिए।'' श्याम मुखाकृति पर बड़े से बेसर की आभा छिटक रही थी, सफेद भक्क दाँत की हँसी खिलखिलाहट में बदल गई, ''मैं अकेली ही प्रसन्न हूँ।'' किसी ने कुछ न पूछा। अभ्यर्थना में इंजीनियर साहब खड़े थे। परंतु जानकी उपेक्षा भाव से प्रकोष्ठ से निकली और जीप में बैठ गई।

''अब मैं जाऊँगी।''

'"दाईजी, बाजार नहीं चलना है? कोई सौगात, कोई खरीद–फरोख्त?" कुंजा ने पूछा।

''नहीं, अभी जिस काम से आई थी वह संपन्न हुआ; अब सीधे गाँव जाना है,'' कुंजा बैठ गया। इंजीनियर साहब सकते में खड़े रहे। ड्राइव ने इशारा पा जीप स्टार्ट कर दी।

जानकी को अब बोध हुआ कि किसी ने एक शब्द ''धन्यवाद'' का नहीं कहा। किसी के चेहरे पर पश्चाताप का भाव नहीं था। एकमात्र आश्वस्ति का भाव था, भय से छुटकारा पाने का भाव।

बड़े जमींदार की दुलारी इकलौती बेटी जानकी ने दस्तखत के अलावा कुछ नहीं पढ़ा–लिखा। गाँव में स्कूल नहीं था, शहर बिटिया को भेजा नहीं। गरीब घर का दामाद खोजा, पढ़ा–लिखाकर इंजीनियर बनाया पिता ने कि बेटी आगे सुख करेगी। सिलाई–कढ़ाई, अरिपन पुरहर सीखने के लिए गाँव की लड़कियाँ बैठी रहतीं जानकी के पास। जानकी स्वयंभू शिक्षिका–प्रशिक्षिका बनी बैठी है बेभाव। हृदय का भाव है, और कुछ नहीं। सीखने वाली लड़कियों ने इसका व्यवसाय बना रखा है। जानकी धचके से साकांक्ष हुई।

भतीजे की बहू कह रही थी, "बुआजी, तलाक के बाद बेटी फिर अपने पिता के घर की हो जाती है। वही पदवी, वहीं गोत्र यानी कुमारी कन्या– समझी न। आजकल लड़कियां विवाह भी करती हैं।'' अनायास जानकी को ये शब्द स्मरण हो आए। हंसी आ गई उसे। अर्थात बाबूजी ने जो कन्यादान किया था, वह लौट गई। दान की गई वस्तु लौटने लगी। वाह! लेकिन एक बड़ी अच्छी बात हुई, जब तक जीऊंगी, चूड़ियां पहनूंगी, मछली खाऊंगी। ठहाका–सा लगाया जानकी ने। मतलब, मतलब वैधव्य का घोर मर्मांतक दंश नहीं झेलूंगी। जीप हरहराती सी चल रही थी, सो किसी ने ठहाके को नहीं सुना न कुंजा ने, न ड्राइवर ने।

अनामिका

आधुनिक समय में हिन्दी भाषा की प्रमुख कवयित्री, कहानीकार और उपन्यासकार अनामिका का जन्म 17 अगस्त, 1961 को बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में हुआ था। इन्हें समकालीन हिंदी कविता की सर्वाधिक चर्चित कवयित्रियों में शामिल किया जाता है। इन्हें हिन्दी कविता में अपने विशिष्ट योगदान के लिए जाना जाता है। इनको 'टोकरी में दिगंत' नामक काव्य संग्रह के लिए 2021 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया है। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. पीएचडी, डी.लिट. की डिग्रियां हासिल की हैं और वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के सत्यवती कॉलेज के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन कार्य कर रही हैं। इन्हें राजभाषा परिषद पुरस्कार, साहित्य सम्मान, भारत भूषण अग्रवाल तथा केदार सम्मान समेत कई अन्य पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में कविता संग्रह गलत पते की चिट्ठी, अनुष्टुप, बीजाक्षर, समय के शहर में, खुरदरी हथेलियां, दूवधान, टोकरी में दिगंत थोरी गाथा इत्यादि हैं। इनके उपन्यास अवांतरकथा, पर कौन सुनेगा, दस द्वारे का पिंजरा व तिनका तिनके पास हैं।

अनामिका

स्त्रियां

पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कॉपियों का
चनाजोर गर्म के लिफाफे बनाने के पहले!
देखा गया हमको
जैसे कि कुफ्त हो उनींदे
देखी जाती है कलाई घड़ी
अलस्सुबह अलार्म बजने के बाद!
सुना गया हमको
यों ही उड़ते मन से
जैसे सुने जाते हैं फिल्मी गाने
सस्ते कैसेटों पर
ठसाठस्स भरी हुई बस में!
भोगा गया हमको
बहुत दूर के रिश्तेदारों के
दुःख की तरह!
एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं–
हमें कायदे से पढ़ो एक–एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी.ए. के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन!
देखो तो ऐसे
जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत दूर जलती हुई आग!
सुनो हमें अनहद की तरह
और समझो जैसे समझी जाती है
नई–नई सीखी हुई भाषा!
इतना सुनना था कि अधर में लटकती हुई
एक अदृश्य टहनी से
टिड्डियाँ उड़ीं और रंगीन अफवाहें
चीखती हुई चीं–चीं
'दुश्चरित्र महिलाएँ, दुश्चरित्र
महिलाएँ–
किन्हीं सरपरस्तों के दम पर फूलीं–फैलीं
अगरधत्त जंगली लताएँ!
खाती–पीती, सुख से ऊबी
और बेकार बेचैन, आवारा महिलाओं का ही
शगल हैं ये कहानियाँ और कविताएँ...।
फिर ये उन्होंने थोड़े ही लिखी हैं
(कनखियाँ, इशारे, फिर कनखी)
बाकी कहानी बस कनखी है।
हे परमपिताओ, परमपुरुषो
बख्शो, बख्शो, अब हमें बख्शो!

मद्य निषेध, उत्पाद एवं निबन्धन विभाग तथा सूचना एवं जन-संपर्क विभाग, बिहार द्वारा जनहित में जारी।

मद्य निषेध, उत्पाद एवं निबन्धन विभाग तथा सूचना एवं जन-संपर्क विभाग, बिहार द्वारा जनहित में जारी।

गीतांजलि श्री

गीतांजलि श्री एक भारतीय उपन्यासकार और लघु कथा लेखिका हैं, जिन्हें अपने हिंदी भाषा के उपन्यास 'रेत समाधि' (2018) के लिए अत्यधिक लो. कप्रियता प्राप्त हुई है। डेजी रॉकवेल द्वारा उनके इस उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद "Tomb of Sand" के रूप में किया गया था। साल 2022 में, "Tomb of Sand"' ने दुनिया का सबसे सम्मानित अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार जीता। हिंदी साहित्य और भारतीय भाषाओं के इतिहास में यह पहली बार है जब किसी हिंदी की कृति को यह प्रतिष्ठित पुरस्कार दिया गया है। इस तरह गीतांजलि श्री ने बुकर प्राइज को प्राप्त करके इतिहास रच दिया है। उनका जीवन आज हिन्दी ही नहीं भारत के सम्पूर्ण साहित्य जगत के लिए प्रेरणा बन गया है। गीतांजलि श्री मूल रूप से उत्तर प्रदेश के मैनपुरी की निवासी हैं, जो वर्तमान में दिल्ली में रह रही हैं। गीतांजलि का जन्म 12 जून 1957 को मैनपुरी में हुआ। गीतांजलि का मूल नाम गीतांजलि पांडे था, उन्होंने अपनी मां का सरनेम श्री अपने नाम के साथ बाद में जोड़ लिया।

गीतांजलि श्री

प्राइवेट लाइफ

बाहर संसार का बेकार शोर उठ रहा था और बन्द खिड़की की दरारों से कमरे में दाखिल हो रहा था। उसने चाहा कि वह खिड़की खोल दे, पर फिर बन्द छोड़ देना ही बेहतर समझा। उन्होंने वे चप्पलें उसके मुँह पर दे मारीं और पागलों की तरह चीखे, ''बताओ यह कहाँ से आईं ?''

चाची सिसक–सिसककर रो रही थीं। उसके मन में छाए घने सियापे को कुछ बेध नहीं पा रहा था।

''यह क्यों बताएगी ? मैं अभी रस्तोगी को बुलाता हूँ। वह बताएँगे। यहीं इसके सामने। तब देखते हैं यह कैसे घूरती है।''

रस्तोगी मकान–मालिक थे। पाँच महीनों के अन्दर ही अन्दर भरते चले गए थे। अब जब मौका मिला तो टूटे बाँध की तरह फट पड़े।

पाँच महीने वह भी छिपा गई थी कि उसने यह बरसाती ले ली है और होस्टल छोड़ दिया है। तनख्वाह का एक चौथाई से कुछ अधिक किराए में लुट जाता था, पर उसे वह मंजूर था। अपने घर की तमन्ना बहुत तीव्र हो चुकी थी, जिसे वह अपनी पसन्द से सजा सके, जहाँ वह अपने दोस्तों को बुला सके...एक भरी–पूरी जिन्दगी जिए। बरसाती के कण–कण पर उसने अपने व्यक्तित्व की छाप लगाई थी। खुद डिजाइन किए केन फर्नीचर से सुसज्जित किया था। छत पर ''बौन साई' के पेड़ एकत्र किये थे। रसोई में लकड़ी के बर्तन भर दिए थे। गैस, सैकेंड–हैंड फ्रिज, म्यूजिक सिस्टम, सबके लिए जगह बना ली थी। दोस्तों का आना–जाना चल निकला था। उसे मालूम था, उन्हें भी, चाची को भी, यह कभी गवारा नहीं होगा कि वह अकेली घर बनाकर रहे। ऐसे ही उनके मन में सैकड़ों मलाल थे। वह उसे नौकरी करने से नहीं रोक पाए थे। शादी के लिए उसे किसी तरह राजी नहीं करा पाए थे। पहाड़ की तरह उसकी उम्र हो रही थी, पर वह उसे 'इज्जत' से बसर करने को तैयार नहीं कर पाए थे। वह उनके लिए खटकता काँटा बन गई थी। एक सीमा तक वह बदलते जमाने के साथ चलने में ऐतराज नहीं करते थे। उसकी सखियों में एक मुसलमान भी थी। उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। पर हर बात की हद होती है। वह तो जैसे कहीं भी रुकने को तैयार नहीं थी। कितनी भी उसकी रस्सी ढीली छोड़ो, वह खूँटे से और दूर होना चाहती थी।

और आज तो जैसे उसने रस्सी ही तोड़ दी थी। उसके विश्वास को गहरी ठेस पहुँचाई थी। एक बरसाती में...अकेली...बिना

बताए पाँच महीने से रह रही थी। और...और...वह आदमी...ये चप्पलें. ....। दुख से वे तिलमिला उठे, ''अड्डा चलाए और हम चुपचाप देखें!''

वह चुप रही। क्या उसने कोई नासमझी की थी जो खुद ही चाची को अपनी बरसाती के बारे में बता दिया था ? पर अपना नाम पता छिपाकर भी जिया जाता है क्या? वह भी अपने ही घरवालों से? फिर छिपाए क्यों? उसका भी तो हक है जीने का। जिन्दगी को समझने का। यह कैसे हो सकता है कि जीने को गुनाह मान, खुद को गुनहगार समझ सबसे कतराती फिरे ?

पर उन्हें यह सब बेबुनियाद बकवास लगी थी––''आग में हाथ डालकर आग को नहीं पहचाना जाता।''

उसने भी जोश में जवाब दे दिया था, ''गाड़ी के नीचे न आ जाएँ, इस डर से सड़क पर ही न निकलें, यह कहीं की बुद्धिमानी नहीं है।''

वे बिलबिला उठे थे, ''किस कदर ढीठ होती जा रही है। कोई इससे कुछ न कहे, बस इसे आजाद छोड़ दे और यह जो चाहे करती रहे...''

वे चुप ही नहीं हो पाए थे, ''अलग, अकेले रहने की क्या जरूरत पड़ गई? होस्टल में कौन–सी कमी है? हर सहूलियत है, इज्जत है, सुरक्षा है, कोई देखनेवाला है....''

यही तो वह कह रही थी। किसी देखनेवाले की जरूरत नहीं है। उसकी दिनचर्या तय करने वाला कोई और नहीं होगा। वे ज्वालामुखी की तरह फूट पड़े थे, ''यह जरूरी होता है। हमारे समाज में लड़की हमेशा किसी की निगरानी में रहती है। पहले बाप, फिर पति, फिर बेटा उसकी देख–भाल करता है।''

''पर मैं अपनी देख–रेख खुद करूँगी।'' उसे लगा, कैसी जिल्लत है जो ऐसी बात को शब्द देने पड़ रहे हैं। जैसे कहना पड़े, मुझे रातों को सोने का इख्तियार है।

''तुम कितनी अच्छी तरह करोगी वह तो मैं देख रहा हूँ।'' वे उफनते ही चले गए, ''खानदान की आबरू से खिलवाड़ कर रही हो।...हमारे समाज में लड़की बहुत बड़ी हस्ती होती है..देवी होती है। उसकी इज्जत हल्की–फुल्की नहीं होती।...बहुत सँभलकर चलना होता है। हर कदम फूँककर रखना पड़ता है।...लड़की के पलक झपकने का भी मतलब लगाया जाता है।...इज्जत सबसे मूल्यवान वस्तु है...।'

हाँ, उसे मालूम था वह कम बोलना और कम नजर आना, जो लड़की की इज्जत बनाता है। उसके बचपन में वे, उसे भी और माँ को भी, निरन्तर सुनाते थे––''ऐसे रहो कि किसी को पता न चले कि घर में कोई है।'

उसने कहना शुरू किया, ''जिसे आप इज्जत समझते हैं, उसे मैं अपनी सबसे बड़ी बेइज्जती मानती हूँ।''

''बकवास मत करो, वे चीखी उठे, ''बेवकूफ हो...समझती नहीं...।''

उसने उनके काँपते हाथों को देखा। उनके बूढ़े तमतमाते चेहरे को देखा। उनकी आँखों में कट्टरपन की लौ देखी।

उसकी सारी बातें उन्हें बनावट लग रही होंगी। बड़ी–बड़ी किताबों से रटी हुई।

उसने शान्त स्वर में कहा, ''मैं अपने ढंग से जीना ठीक समझती हूँ। आप समझ सकते हैं तो यहाँ रहिए। जबर्दस्ती तो मैं समझा नहीं सकती। मैंने तो यही चाहा था कि आप भी मेरे जीवन में शरीक हो।..पर मेरी बेइज्जती करने के लिए नहीं...मेरे व्यक्तित्व की. ..मेरी प्राइवेट लाइफ की...आपको कद्र करनी ही पड़ेगी। आपको अच्छा नहीं लगता तो चले जाइए...।''

उनके बदन में सनसनी फैल गई। ''यह मजाल...?' उन्होंने लपककर उनकी बाँह जकड़ ली। उसने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया। 'डुब्लीकेट' चाभी उठाकर वह दरवाजे की तरफ मुड़ गई। जाते–जाते बोली, ''देखिए, है तो यह मेरा ही घर। आप अच्छे से रह सकते हैं तो ठीक है। तोड़–फोड़ मचाना है तो चले जाइए।'' वह खुद पर जब्त न कर पाई, ''यू कैन गेट आउट।''

कहकर वह चली गई।

वे पागल हाथी की तरह चक्कर काटने लगे। यह कैसे हो सकता है? अपना खून है। उसे हर हाल में बचाना होगा। आखिरी दम तक उसके पीछे जाना होगा। उसका दिमाग फिर गया है। अपने को, सबको, बरबाद करके रख देगी।

ऐसे ही क्षण की रस्तोगी को तलाश थी––''साहब, हमारे संग चाय पीजिए।''

रस्तोगी बैंक में काम करते थे। उनकी एक पत्नी और चार लड़कियाँ थीं। जैसे–तैसे उन्होंने यह घर बना लिया था और ऊपर के दो कमरे किराए पर उठा दिए थे। सिगरेट–शराब का बन्दोबस्त इस तरह हो गया था। बीवी–बेटियों की खातिर उन्होंने वह किया जो बिरले करते हैं। अकेली औरत को बरसाती दे दी। उन्हें लगा था वे दिन–भर बैंक में रहते हैं,, घर पर सब अकेले होते हैं, किराएदार कोई शान्त महिला होगी तो अच्छा ही रहेगा। यह लड़की पास ही एम्बैसी में ट्रांसलेटर थी, पढ़ी–लिखी थी और भले खानदान की दिखती थी। ठीक ही रहेगी।

पर...

अब उन्हें अपनी भूल का अहसास हो रहा था। उनकी भी मुहल्ले में कोई इज्जत है। सच तो यह है कि इस उम्र पर, भले या बुरे घर की लड़की अकेली हो तो हर समझदार इनसान के मन में प्रश्न उठना चाहिए। रस्तोगी मन ही मन कुढ़ने लगे। किस तरह कुछ करें, सूझ ही नहीं रहा था। यह लड़की है या कुछ और? छत पर बैठकर आदमियों के संग सिगरेट पीती है। खुलेआम। नए वर्ष पर रस्तोगी को शराब की दुकान पर मिल गई थी। बियर खरीद रही थी। और वह काले चश्मेवाला फिरंगी आए दिन उसके घर में घुसा रहता है। दो रात वहाँ ठहरा भी था। शायद हवाई अड्डे से सीधा आ गया था। उसके सूटकेस पर

गीतांजलि श्री

'आलीतालिया एयरवेज' की चिप्पी लगी थी।

''देखिए साहब, आप हमारे बुजुर्ग हैं। आपका सम्मान करता हूँ। पर बुरा न मानिए..लड़कियों का इतना आधुनिक होना..ठीक नहीं..दस तरह की बातें होती हैं...''

''हाँ–हाँ बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप। आपकी भी लड़कियाँ हैं....''

''हाँ साहब, इसीलिए बोल रहा हूँ..बुरा न मानिएगा..आप बड़े आदमी हैं...यहाँ..इस घर में बैठकर... सिगरेट पिए...''

सिगरेट..बियर..फिरंगी..!

उनके सिर पर जुनून सवार हो गया।

''आप निश्चिन्त रहिए। कुछ महीनों की थी तब से मेरे साथ है...मेरा खून है...मैं देख लूँगा...इन्हीं हाथों से चार टुकड़े कर दूँगा।''

''हमारे यहाँ लड़कियाँ किसी के सामने नहीं आती हैं,'' उन्होंने उससे चिघाड़कर कहा था, ''किसी को अपना स्पर्श नहीं करने देतीं। बाप तक को नहीं।''

सच कह रहे थे। जब उसने सड़क पार करते वक्त बचपन में उनका हाथ थाम लिया था तब उन्होंने कहा था कि लड़कियों को अपनी माँ का हाथ पकड़ना चाहिए।

उसके मन में यादों का अम्बार फूटा। वह छोटी लड़की जिसको देखकर उन्होंने गम्भीर आवाज में कहा था, ''अब तुम बड़ी हो रही हो।''

वह बेइज्जत हो गई थी। वे उस पर आरोप लगा रहे थे। उसे अपने बदन पर शरम आ गई।

तब वह फ्रॉक पहनती थी। उन्होंने एक दिन चाची को डाँट दिया और उसे फ्रॉक के नीचे पैंट पहनवा दी। पूरी टाँगों को ढकती हुई।

शायद उसके व्यक्तित्व ने बढ़ना बन्द कर दिया, जिस दिन उसका बदन बढ़ने लगा।

''हमारे यहाँ नारी का बहुत ऊँचा आदर्श है। उसे अपने आपको सबसे दूर रखना है। बदन को चादर में लपेट के रखना है।''

वह शरम से सिमटती चली गई थी। जितना ही उसका बदन बढ़ था, उतनी ही वह सिकुड़ गई थी। उसका सारा अस्तित्व उन उभरते गोलों में जाकर समा गया था। उसकी सारी चेतना और उसके जीवन–भर की चेष्टा उन गोलों को छिपाने में लग गई, मानो सारी दुनिया उनकी भूखी है और उसकी सारी जान उनमें समाई हो।

जब शाम ढले गाड़ी एक गाँव के पास पंक्चर हो गई थी तो वह भयभीत हो उठी। उन्होंने ड्राइवर को भेजकर गाँववालों को पहिए की मरम्मत करने के लिए बुलवाया। दबे स्वर में उससे कहा कि चुपचाप पीछे की सीट पर लेट जाओ। वह घबराकर चाची की गोद में दुबक गई थी और चाची ने उसे दोहर से ढँक दिया था। आदमियों की भारी–भारी आवाजें उसके कानों में एक असह्य युग तक गूँजती रहीं। फिर खुदा के फजल से गाड़ी चल पड़ी थी।

वे भी सोचते होंगे। न जाने क्या कमी रह गई उनके सिखाने में। क्यों यह सब्त सवार हुआ इस पर जो अपने अस्तित्व को अपने बदन से अलग देखने लगी। इतनी आजाद खयाल हो गई। वे अपने आपको कोसते रहे जो उसे इस नई तालीम का भागीदार बनाया। तभी बड़े–बूढ़े कहते हैं कि लड़की को ज्यादा पढ़ाना नहीं चाहिए। उस पर कड़ी निगाह रखनी चाहिए।

उन्होंने उसे बहुत अकेला छोड़ा। उन्हें पता ही नहीं चला कि उसके दिमाग में क्या आकृतियाँ घर कर रही हैं। एक बार उन्होंने उसे स्कूल की किताब में छिपाकर प्रेमकहानी पढ़ते पकड़ा था। उस पर बिगड़े भी थे––'हमारे यहाँ लड़कियाँ सबकुछ देर से जानती हैं। वे पवित्र होती हैं।'

फिर कभी उन्होंने सीमोन दी बूवुआ की किताब, जो वह पढ़ रही थी, हमेशा के लिए छिपा दी थी। चाची से कहा भी था कि अकेले मत छोड़ा करो, कोई गलत चीज न सीखने पाए।

उसे वह दिन याद भी आया जब वह छाँटकर मीठे अमरूद लाई थी और बचपने की एक छलाँग लगाकर उनके दफ्तर

गीतांजलि श्री

में कूद आई थी। तब उन्होंने बहुत जोर से उसे डाँट दिया था, क्योंकि वह तेरह वर्ष की थी और पतली सी नाइटी पहने अन्दर आ दमकी थी, टाइप बाबू के सामने। तब भी उन्होंने कहा था––''हम किसी को अपना बदन नहीं देखने देते। दूर से नमस्कार करके अन्दर चले जाते हैं।'

उसके सिमटे हुए बचपन ने झुककर चलना सिखा दिया। अपनी ही काया पर शरमाकर सबसे कतरना सिखा दिया। सबकी नजर के डर ने उसे सन्नाटे में रहना सिखा दिया। पर वह तो बचपन की बात थी, बौने बचपन की। सन्नाटे में भी न जाने कहाँ से सोच की चिंगारी दबी पड़ी थी। अनजाने में झोंके आते रहे और आग भड़क उठी।

जब उन्हें पता चला, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। उसने उनके हर नियम का, हर आदर्श का उल्लंघन कर दिया। वे कहते थे, वह बेशरम हो गई है। वह कहती थी, वह स्वाभिमानी हो गई है। कहती थी, वह एक जिस्म से इनसान बन गई है। वे कहते थे, वह एक इनसान से गन्दा जिस्म बन गई है।

''कोई और शब्द नहीं बचा तुम्हारे लिए। गिर गई हो। नीच..औरत बन चुकी हो। पागल...दुराचारी..अपने इन बूढ़े चाचा–चाची की मौत बन गई हो।''

''जहाँ सब कपड़े पहन के घूमते हैं, वहाँ निर्वस्त्र घूमोगी ?'' वे चिल्ला पड़े।

''आप चले जाइए,'' उसके मुँह से दृढ़ स्वर निकला, ''मेरी अपनी राह है। इस उम्र में मुझे अपने हिसाब से जीने का हक है। आपको मेरे ढंग नहीं रुचते तो आप जा सकते हैं। उस वक्त वे चले गए थे। पर जाकर वे रोते रहे। चाची को दुत्कारते रहे। वह भी रोई थी अपनी तीस वर्ष की नाकामी पर। अकेली होकर, समाज में इज्जत न पाने की लाचारी पर। आदमी न होकर, उसी तरह जीने की चाह की लानत पर। जीवन का मनचलापन वह कबूल करे, यह हक उसे नहीं था। नई दिशाओं, नई मंजिलों की तलाश उसके लिए नहीं। और अगर खुली हवा के थपेड़े लग ही गए तो हमदर्दी करने वाला कोई नहीं। यह कौन मानेगा कि उसका भी जीवन पूछ–पूछकर नहीं आता? याद है हर इतवार को बरसातियों के वे इश्तिहार देखना। किसी ने फोन पर मना कर दिया। किसी ने उसके पीछे नजर फेंकी––'आप..अकेली..माफ कीजिए' और किसी ने कानून गिनाने शुरू कर दिए––'रात को कोई आदमी मेहमान न हो...शोर न हो..मिलनेवालों की लिस्ट बना दीजिए।'

फिर रस्तोगी ने, बिना कुछ कहे–सुने उसे बरसाती दे दी। वैसे उनकी बीवी पूरी कोशिश करती कि कुछ जान जाए। कभी सिगरेट पैकेट देखकर उसकी आँखें फैल जातीं, कभी किसी आदमी की झलक पाकर। और तो और, जैसे ही वह अपनी डाक देखने सीढ़ी से उतरती, वह भी धम्–धम् अपनी डाक जाँचने उतर आती, मानो दरवाजे की ओट में बस उसी की ताक में बैठी रहती हो। चिट्ठियाँ उठाते हुए पूछती, ''आपके माँ–बाप ने आपकी शादी नहीं की?'' ''मैंने नहीं की।'' उसे थोड़ गुस्सा आता।

उसकी भी जिद्द हो गई कि दबंग बनूँगी, किसी को फुसलाने की कोशिश नहीं करूँगी। जब अज्जु भइया रहने आए और खत की पेटी के पास मकान–मालकिन पूछ बैठीं––'कौन आए हैं ?' बड़ी तैयारियाँ हैं' तो उसने 'मेहमान' कहकर मुँह फेर लिया।

इन इज्जत के भूखों की कुढ़न बढ़ती गई। पर अब खेल का वारा–न्यारा उनके बूते का बन चुका था।

रात नौ बजे फिरंगी उसे संगीत–सम्मेलन में ले जाने आया तो रस्तोगी जो अपने अतिथि के लिए नहीं खड़े होते थे, सरपट–सरपट दौड़े गए कि कहीं मेहमान ऊपर तशरीफ ले जाने का इरादा न बदल दे। जीने का दरवाजा खोल आए। ऊपर वे बैठे थे। स्तब्ध।

वह उठी––''मैं देर से लौटूँगी''। और चली गई।

उन्हें मानो लकवा मार गया। सुन्न। कोई पुराना तजुरबा हो तो सूझती कैसे निपटाएँ। पर इस तरह लड़की आँख मिलाकर चल दे..उस..लफंगे के साथ....। वे हाथ मलते रह गए। तब पत्नी के पैरों पर गिरे और उन्हें साथ लेकर फिर आए। अचानक। आधी रात को।

''यह मैं क्या सुन रही हूँ ?'' चाची रोने लगीं।

उसने समझाने की कोशिश की, ''चाची, सबका हक है... सबकी प्राइवेट लाइफ है...।'' ''प्राइवेट लाइफ...!' उनकी चीख गले में अटकने लगी थी, ''सुनती हो ? अब यह प्राइवेट लाइफ चलाएगी. ..देख रही हो...धन्धा...।''

और सन्न–से वे चप्पलें उसके कान को रेतती हुई दीवार से टकराकर नीचे गिर गईं।

''किसकी हैं ये चप्पलें ? पूछो..बताओ...रस्तोगी जी, एक मिनट आइए। देखिए हमारी पत्नी। बूढ़ी हैं, लँगड़ी हैं, चल नहीं पातीं। परेशान होकर आई हैं। आप बताइए, क्या होता है यहाँ...।''

वह ठगी–सी बैठी रही। रस्तोगी ने उसके नाम आए खत सामने रख दिए।

''पूछो इससे...पूछो..इस...''

शायद बेजार रातों का जिक्र कर दिया हो। या उसकी कमर के तिल को याद किया हो। उसने देखा, वहीं, उसके सामने, बर्बरता से उसकी अँतड़ियाँ बाहर खिंची जा रही थीं।

''आदमी जानवर होता है। भूखा भेड़िया। वह औरत की इज्जत नहीं करता है।...उसे..खाता है...।''

उसे दिख रहा था, वही, उतना ही, जो उन्हें दिख रहा था...। पता नहीं अब भी वे नंगी तस्वीरें देखते हैं कि नहीं। तब उनके तकिए के नीचे, अक्सर फिरंगी पत्रिकाएँ पड़ी रहती थीं, जिनमें जिस्मों की नुमाइश थी। आदमियों के 'खाने' के लिए ...।' पत्रिका का अगला पन्ना खुल गया, जो हमेशा खुला रहेगा, जो निरन्तर उन्हें दिख रहा होगा।

अनीता वर्मा

अनीता वर्मा का जन्म 25 जून, 1959 को दरभंगा, बिहार में हुआ। देवघर और पटना में आरंभिक शिक्षा के बाद इन्होंने भागलपुर विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने अपना शोध कार्य प्रेमचंद के उपन्यासों में महाजनी सभ्यता पर किया है। अपने पहले कविता-संग्रह 'एक जन्म में सब' (2003) से चर्चा में आई अनीता वर्मा को कविता के ऐसे नए स्त्री-स्वर के रूप में चिह्नित किया गया जिसके पास एक विरल संवेदना है और अपने आंतरिक संसार के स्पंदनों को सही शब्दों और सार्थक बिंबों में रूपांतरित कर पाने की क्षमता है। 2008 में प्रकाशित उनके दूसरे कविता-संग्रह 'रोशनी के रास्ते पर' में कवि के रचनात्मक अंतर्संघर्ष के साथ-साथ कविताओं के कथ्य और शिल्प में आए परिवर्तनों की पहचान की गई है जहाँ वह बिंबों से वृत्तांत की ओर, स्मृति से स्वप्न की ओर, अंतरंग से बहिरंग की ओर और अनुभूति से अनुभव की ओर जाने और कभी-कभी एक-दूसरे में आवाजाही करने की एक अनोखी यात्रा दर्ज करती हैं। कविता में भाषिक सादगी और विषय-चयन के लिए उनकी प्रशंसा की जाती है।

अनामिका

स्त्री का चेहरा

इस चेहरे पर जीवन भर की कमाई दिखती है
पहले दुख की एक परत
फिर एक परत प्रसन्नता की
सहनशीलता की एक और परत
एक परत सुंदरता

कितनी किताबें यहाँ इकट्ठा हैं
दुनिया को बेहतर बनाने का इरादा
और खुशी को बचा लेने की जिद

एक हँसी है जो पछतावे जैसी है
और मायूसी उम्मीद की तरह
एक सरलता है जो सिर्फ झुकना जानती है
एक घृणा जो कभी प्रेम का विरोध नहीं करती

आईने की तरह है स्त्री का चेहरा
जिसमें पुरुष अपना चेहरा देखता है
बाल सँवारता है मुँह बिचकाता है
अपने ताकतवर होने की शर्म छिपाता है

इस चेहरे पर जड़ें उगी हुई हैं
पत्तियाँ और लतरें फैली हुई हैं
दो–चार फूल हैं अचानक आई हुई खुशी के
यहाँ कभी–कभी सूरज जैसी एक लपट दिखती है
और फिर एक बड़ी–सी खाली जगह

इस्मत चुगताई

इस्मत चुगताई (21 अगस्त, 1915–24 अक्टूबर, 1991) का जन्म उत्तर प्रदेश के बदायूं में हुआ। उन्हें 'इस्मत आपा' के नाम से भी जाना जाता है। वे उर्दू साहित्य की सर्वाधिक विवादास्पद और सर्वप्रमुख लेखिका थीं, जिन्होंने महिलाओं के सवालों को नए सिरे से उठाया। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं– कहानी संग्रह चोटें, छुई मुई, एक बात, कलियाँ, एक रात, दो हाथ दोजखी, शैतान; उपन्यासः टेढ़ी लकीर, जिद्दी, एक कतरा ए खून, दिल की दुनिया, मासूमा, बहरूप नगर, सैदाई, जंगली कबूतर, अजीब आदमी, बांदी; आत्मकथाः "कागजी हैं पैराहन"। उन्होंने अनेक चलचित्रों की पटकथा लिखी और जुगनू में अभिनय भी किया। उनकी पहली फिल्म "छेड़–छाड़" 1943 में आई थी। वे कुल 13 फिल्मों से जुड़ी रहीं। उनकी आखिरी फिल्म "गर्म हवा" (1973) को कई पुरस्कार मिले।

इस्मत चुगताई

घूंघट

सफेद चाँदनी बिछे तख्त पर बगुले के परों से ज्यादा सफेद बालों वाली दादी बिलकुल संगमरमर का भद्दा–सा ढेर मालूम होती थीं। जैसे उनके जिस्म में खून की एक बूँद ना हो। उनकी हल्की सुरमई आँखों की पुतलियों तक पर सफेदी रींग आयी थी और जब वो अपनी बेनूर आँखें खोलतीं तो ऐसा मालूम होता, सब रौजन बन्द हैं। खिड़कियाँ दबीज पर्दों के पीछे सहमी छिपी बैठी हैं। उन्हें देखकर आँखें चौंधियाने लगती थीं जैसे इर्द–गिर्द पिसी हुई चाँदी का गुबार मुअल्लक हो। सफेद चिनगारियाँ–सी फूट रही हों। उनके चेहरे पर पाकीजगी और दोशीजगी का नूर था। अस्सी बरस की इस कुँवारी को कभी किसी मर्द ने हाथ नहीं लगाया था।

जब वो तेराह–चौदह बरस की थी तो बिल. कुल फूलों का गुच्छा लगती थीं। कमर से नीचे झूलते हुए सुनहरी बाल और मैदा शहाब रंगत। शबाब जमाने की गर्दिश ने चूस लिया, सिर्फ मैदा रह गया है। उनके हुस्न का ऐसा शोहरा था कि अम्माँ बावा की नींदें हराम हो गई थीं। डरते थे कहीं उन्हें जिन्नात ना उड़ा के लिए जाएँ क्योंकि वो इस धरती की मखलूक नहीं लगती थीं। फिर उनकी मँगनी हमारी अम्माँ के मामूँ से हो गई। जितनी दुल्हन गोरी थी, उतने ही दूल्हा मियाँ स्याह भट्ट थे। रंगत को छोड़कर हुस्न–ओ–मर्दानगी का नमूना थे– क्या डसी हुई फटारा आँखें, तलवार की धार जैसी खड़ी नाक और मोतीयों को माँद करने वाले दाँत, मगर अपनी रंगत की स्याही से बे तरह चिड़ते थे।

जब मँगनी हुई तो सबने खूब छेड़ा, "हाय दूल्हा हाथ लगाएगा तो दुल्हन मैली हो जाएगी।" "चाँद को जानो गरहन लग जाएगा।"

काले मियाँ उस वक्त सतरह बरस के खुद–सर बिगड़े दिल बिछड़े थे। उन पर दुल्हन के हुस्न की कुछ ऐसी हैबत तारी हुई कि रात ही रात जोधपुर अपने नाना के हाँ भाग गए। दबी जबान से अपने हमउम्रों से कहा, "मैं शादी नहीं करूँगा।"

ये वो जमाना था जब चूँ चरा करने वालों को जूते से दरुस्त कर लिया जाता था। एक दफा मँगनी हो जाएगी तो फिर तोड़ने की मजाल नहीं थी। नाकें कट जाने का खदशा होता था। और फिर दुल्हन

इस्मत चुगताई

में ऐब क्या था? यही कि वो बेइंतेहा हसीन थी। दुनिया हुस्न की दीवानी है और आप हुस्न से नालाँ, बद मजाकी की हद।

"वो मगरूर है," दबी जबान से कहा।

"कैसे मालूम हुआ?"

जब कि कोई सबूत नहीं मगर हुस्न जाहिर है मगरूर होता है और काले मियाँ किसी का गुरूर झेल जाएँ ये ना–मुमकिन। नाक पर मक्खी बिठाने के रवादार ना थे। बहुत समझाया कि मियाँ, वो तुम्हारे निकाह में आने के बाद तुम्हारी मिल्कियत होगी। तुम्हारे हुक्म से दिन को रात और रात को दिन कहेगी। जिधर बिठाओगे बैठेगी, उठाओगे उट्ठेगी। कुछ जूते भी पड़े और आखिर–ए–कार काले मियाँ को पकड़ बुलाया गया और शादी कर दी गई। डोमनियों ने कोई गीत गा दिया। कुछ गोरी दुल्हन और काले दूल्हा का। इस पर काले मियाँ फनफना उठे। ऊपर से किसी ने चुभता हुआ एक सहरा पढ़ दिया। फिर तो बिलकुल ही अलिफ हो गए। मगर किसी ने उनके तंतना को संजीदगी से ना लिया। मजाक ही समझे रहे और छेड़ते रहे।

दूल्हा मियाँ शमशीर–ए–बरहना बने जब दुल्हन के कमरे में पहुँचे तो लाल–लाल चमकदार फूलों में उलझी–सुलझी दुल्हन देखकर पसीने छूट गए। उसके सफेद रेशमी हाथ देखकर खून सवार हो गया। जी चाहा अपनी स्याही इस सफेदी में ऐसी घोट डालें कि इम्तियाज ही खत्म हो जाए। काँपते हाथों से घूँघट उठाने लगे तो वो दुल्हन बिलकुल औंधी हो गई।

"अच्छा तुम खुद ही घूँघट उठा दो।"

दुल्हन और नीचे झुक गई।

"हम कहते हैं। घूँघट उठाओ!" डपटकर बोले।

दुल्हन बिलकुल गेंद बन गई।

"अच्छा जी इतना गरूर!" दूल्हे ने जूते उतारकर बगल में दबाए और पाइंबाग वाली खिड़की से कूदकर सीधे स्टेशन, फिर जोधपुर। इस जमाने में तलाक वलाक का फैशन नहीं चला था। शादी हो जाती थी। तो बस हो ही जाती थी। काले मियाँ सात बरस घर से गायब रहे। दुल्हन ससुराल और मीका के दरमयान मुअल्लक रहीं। माँ को रुपया–पैसा भेजते रहे। घर की औरतों को पता था कि दुल्हन अनछुई रह गई। होते–होते मर्दों तक बात पहुँची। काले मियाँ से पूछगछ की गई।

"वो मगरूर है।"

"कैसे मालूम?"

"हमने कहा घूँघट उठाओ, नहीं सुना।"

"अजब गाऊदी हो, अमां कहीं दुल्हन खुद घूँघट उठाती है। तुमने उठाया होता।"

"हरगिज नहीं, मैंने कसम खायी है। वो खुद्द घूँघट नहीं उठाएगी तो चूल्हे में जाए।"

"अमां अजब नामर्द हो। दुल्हन से घूँघट उठाने को कहते हो। फिर कहोगे वो आगे भी पेश–कदमी करे, अजी लाहौल वलाकुव्वा।"

गोरी बी के माँ–बाप इकलौती बेटी के गम में घुनने लगे। बच्ची में क्या ऐब था कि दूल्हे ने हाथ ना लगाया। ऐसा अन्धेर तो ना देखा, ना सुना।

काले मियाँ ने अपनी मर्दानगी के सबूत में रंडीबाजी, लौंडेबाजी, मुर्गबाजी, कबूतरबाजी गरज कोई बाजी ना छोड़ी और गोरी बी घूँघट में सुलगती रहीं। नानी अम्माँ की हालत खराब हुई तो सात बरस बाद काले मियाँ घर लौटे। इस मौके को गनीमत समझकर फिर बीवी से उनका मिलाप कराने की कोशिश की गई। फिर से गोरी बी दुल्हन बनायी गईं। मगर काले मियाँ ने कह दिया, "अपनी माँ की कसम खा चुका हूँ, घूँघट मैं नहीं उठाऊँगा।"

सब ने गोरी बी को समझाया, "देखो बनू सारी उम्र का भुगतान है। शर्म–ओ–हया को रखो ताक में और जी कड़ा करके तुम आप ही घूँघट उठा देना। इसमें कुछ बे–शरमी नहीं, वो तुम्हारा शौहर है। खुदा–ए–मजाजी है। उसकी फरमांबर्दारी तुम्हारा फर्ज है। तुम्हारी निजात उसका हुक्म मानने ही में है।"

फिर से दुल्हन सजी, सेज सजायी, पुलाव जर्दा पका और दूल्हा मियाँ दुल्हन के कमरे में धकेले गए। गोरी बी अब इक्कीस बरस की नौखेज हसीना थीं। अंग–अंग से जवानी फूट रही थी। आँखें बोझल थीं। साँसें भरी थीं। सात बरस उन्होंने इसी घड़ी के खाब देखकर गुजारे थे। कमसिन लड़कियों ने बीसियों राज बताकर दिल को धड़कना सिखा दिया था। दुल्हन के हिना आलूदा हाथ पैर देखकर काले मियाँ के सर पर जिन मंडलाने लगे। उनके सामने उनकी दुल्हन रखी थी। चौदह बरस की कच्ची कली नहीं, एक मुकम्मल गुलदस्ता। राल टपकने लगी। आज जरूर दिन और रात को मिलकर सर्मगीं शाम का समाँ बंधेगा। उनका तजर्बेकार जिस्म शिकारी चीते की तरह मुँह–जोर हो रहा था। उन्होंने अब तक दुल्हन की सूरत नहीं देखी थी। बदकारियों में भी इस रस–भरी दुल्हन का तसव्वुर दिल पर आरे चलाता रहा था।

इस्मत चुगताई

"घूँघट उठाओ।" उन्होंने लरजती हुई आवाज में हुक्म दिया।

दुल्हन की छंगुली भी ना हिली।

"घूँघट उठाओ।" उन्होंने बड़ी लजाजत से रोनी आवाज में कहा।

सुकूत तारी है।

"अगर मेरा हुक्म नहीं मानोगी तो फिर मुँह नहीं दिखाऊँगा।"

दुल्हन टस से मस ना हुई।

काले मियाँ ने घूँसा मारकर खिड़की खोली और पाइंबाग में कूद गए।

इस रात के गए वो फिर वापिस ना लौटे।

अनछूई गोरी बी तीस साल तक उनका इंतेजार करती रहीं। सब मर–खप गए। एक बूढ़ी खाला के साथ फतहपुर सीकरी में रहती थीं कि सुनावनी आयी– दूल्हा आए हैं।

दूल्हा मियाँ मोरियों में लोट–पीटकर अमराज का पुलंदा बने आखिरी दम वतन लौटे। दम तूरने से पहले उन्होंने इल्तिजा की कि गोरी बी से कहो आ जाओ कि दम निकल जाए।

गोरी बी खम्भे से माथा टिकाए खड़ी रहीं। फिर उन्होंने संदूक खोलकर अपना तार–तार शहाना जोड़ा निकाला। आधे सफेद सर में सुहाग का तेल डाला और घूँघट सम्भालती लब–ए–दम मरीज के सिरहाने पहुँचीं।

"घूँघट उठाओ।" काले मियाँ ने नजअ के आलम में सिसकी भरी।

गोरी बी के लरजते हुए हाथ घूँघट तक उठे और नीचे गिर गए।

काले मियाँ दम तोड़ चुके थे।

उन्होंने वहीं उकड़ूँ बैठकर पलंग के पाए पर चूड़ियाँ तोड़ीं और घूँघट की बजाय सर पर रंडापे का सफेद दुपट्टा खींच लिया।

Sudha
Milk and Milk Products
वादा शुद्धता का

Empowering Women through Dairy Co-operatives

India is a leading dairy economy with a vast number of milk producers organized into mixed-gender cooperatives. **COMFED** also undertakes supportive activities of Milk Producers for income and social security which includes 4258 Women Dairy Co-operatives exclusively run by women.

COMFED giving them opportunities to emerge as leaders in taking decisions and to participate in day-to-day dairy activities to make a positive change in their lives and to their families.

Supportive Programmes & Benefits:

- **Sat Nischay-2**, an ambitious scheme of the State Government under **"Aatamnirbhar Bihar 2020-25"** with an objective to improve access to Milk Co-operatives and provide good quality Sudha Products
- Provides Balanced Cattle feed
- Artificial Insemination Programme & inclusion in Management Committee
- Cattle Insurance, Cattle Purchase on Subsidy & Vaccination
- Assistance in installation of Biogas Plant
- Around 13 lakh families are benefitted

COMFED

BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.

E-mail: comfed.patna@gmail.com • Toll Free No.: 18003456199 • www.sudha.coop

Dairy Entrepreneurship - Empowering women, empowering life

Dot Communications_Comfed_Women Empowerment_Magazine Ad_Size A4

असीमा भट्ट

बिहार के छोटे से शहर नवादा की असीमा भट्ट ने अपनी हिम्मत और जुनून के दम पर रंगमंच पर अपनी अलग पहचान बनाई है। धारावाहिक 'मोहे रंग दे' और 'बैरी पिया' में उन्होंने सशक्त अभिनय कर दर्शकों की वाहवाही भी बटोरी। वह इन दिनों फिल्मों में चरित्र भूमिकाएं भी निभा रही हैं। असीमा भट्ट ने मगध विश्वविद्यालय बोधगया से मनोविज्ञान में एमए किया। उन्होंने नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा, नई दिल्ली में अध्ययन किया, और FTII पुणे से अपना फिल्म एपरिशन कोर्स किया। उन्होंने बालाजी टेलीफिल्म्स और घोष प्रोडक्शंस में काम किया है। वे पोएट्स एंड राइटर्स में एक पूर्व फ्रीलांसर थीं। वे कई हिंदी अखबारों, पत्रिकाओं के लिए पत्रकार रही हैं और यहां तक कि एक काउंसलर के रूप में भी काम किया है। असीमा भट्ट फिल्म 13 ट्रिब्यूट ऑफ लव 2020 में अपने अभिनय के लिए जानी जाती हैं। वह अब मुंबई में रहती हैं और वेब श्रृंखला, विज्ञापन, टीवी धारावाहिक और फिल्मों के लिए काम करती हैं। उन्होंने अपने पिता सुरेश भट्ट के जीवन पर एक किताब लिखी है जिसका नाम 'मन लागो यार फकीरी में' है।

असीमा भट्ट

लामबंद औरतें

चौराहा जाम कर
एक दूसरे का हाथ अपने हाथ में लेकर
लामबंद हैं
औरतें
चिलचिलाती धूप में
तुमने कर दिया सरकार का चक्का जाम
व्यवस्था है लाचार और मजबूर
रोष में बरसा रही हैं लाठियाँ तुम लोगों पर

मुट्ठी भींच कर और भी कस कर तुम सबने
जोर से पकड़ रखा है
अपना हाथ दूसरे के साथ

वह छोड़ रहे हैं आँसू गैस के गोले
कर रहे हैं पानी की बौछारें
तुम बागी औरतों पर
तुम्हारे लिए पीने का पानी तक नहीं हैं
भरी दुपहरिया में
जहाँ सड़कें भी तप रही हैं
रेगिस्तान की तरह

लहू से लथपथ अपने सर पर तुम सबने बाँध रखी है
अपनी ही साड़ी और दुपट्टे के चिथड़े को बनाकर कफन

जोर–जोर से नारा लगाते हुए बढ़ती जाती हो आगे,
और भी आगे
वह खींच रहे हैं पकड़ कर तुम्हें केश से और
फाड़ रहे हैं तुम्हारे कपड़े

जैसे घसीटी गई द्रौपदी भरी सभा में
और मौन था पूरा का पूरा राजप्रसाद

वहशतगर्दों की आँखों में है नफरत और वासना औरतों के लिए
जो उठा रही हैं जुल्म के खिलाफ आवाज खुली सड़क पर
जिसने हिलाकर रखा दिया है प्रशासन
जिसने डाल दी है व्यवस्था की नाक में नकेल

बौखलाए हुए जुल्मी
अपना जुल्म और बढ़ा देते हैं
बरसाते हैं आग के गोले
तुम सब फिर भी बढ़ती जाती हो
आग के शोलों को चीरते हुए

कायर बलात्कारी यह नहीं जानते
जिस आग से वे तुम्हें डरा रहे हैं
वह तुम अपने सीने में रखती हो
और रोज फूँक मार कर उससे अपना चूल्हा सुलगाती हो।

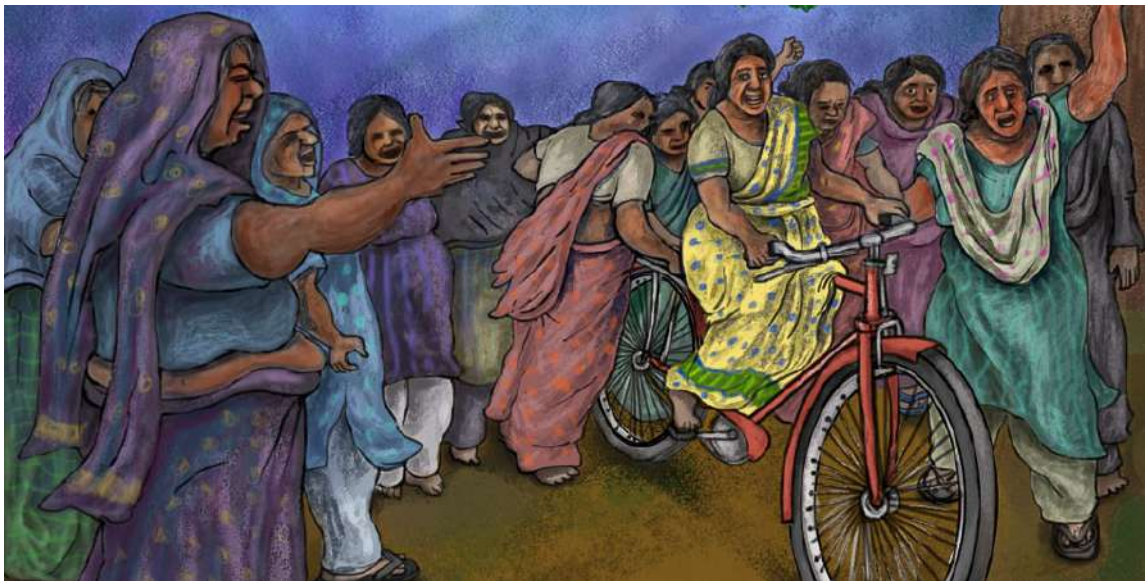

जसिंता केरकेट्टा

जसिंता केरकेट्टा आदिवासी संवेदना और सरोकारों की नई पीढ़ी की कवयित्री हैं। उनका जन्म झारखंड के पश्चिमी सिंहभूम जिले के खुदपोस गाँव में एक गरीब आदिवासी परिवार में हुआ। हाट-बाजार में इमली बेचकर परिवार को आर्थिक सहयोग देने के बीच उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। संघर्ष के इन्हीं दिनों में उन्होंने कविताएँ लिखनी शुरू की जहाँ उनका व्यक्तिगत दुःख समष्टिगत दुःख में अभिव्यक्त होता हुआ अपने समाज के विमर्श को आगे लेकर बढ़ा। उनकी पहली किताब 2016 में आदिवाणी प्रकाशन, कोलकाता से हिंदी-अँग्रेजी में छपी थी। इसके बाद इस किताब को जर्मन के प्रकाशन द्रौपदी वेरलाग ने ग्लूट के नाम से हिंदी-जर्मन में प्रकाशित किया। इस किताब की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए प्रकाशक ने इसे दोबारा छापा। इसके बाद भारतीय ज्ञानपीठ ने जर्मन प्रकाशन द्रौपदी वेरलाग और हाइडलबर्ग के साथ मिलकर उनके काव्य-संग्रह 'जड़ों की जमीन' को हिंदी-अँग्रेजी और हिंदी-जर्मन में एक साथ प्रकाशित किया। उनसे पहले झारखंड के किसी भी आदिवासी कवि की कविताओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक साथ तीन भाषाओं में कभी प्रकाशित नहीं किया गया था।

जसिंता केरकेट्टा

औरत का घर

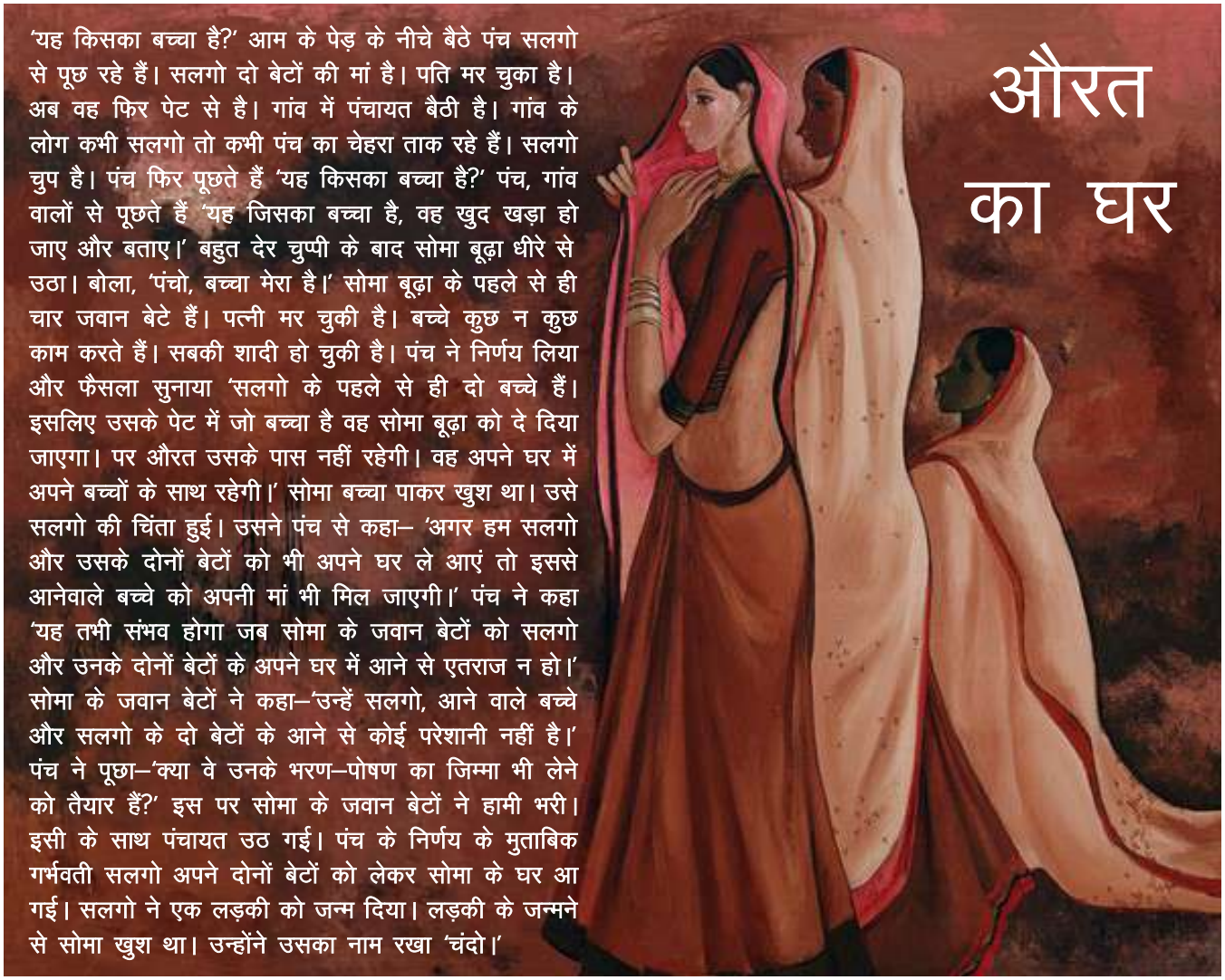

'यह किसका बच्चा है?' आम के पेड़ के नीचे बैठे पंच सलगो से पूछ रहे हैं। सलगो दो बेटों की मां है। पति मर चुका है। अब वह फिर पेट से है। गांव में पंचायत बैठी है। गांव के लोग कभी सलगो तो कभी पंच का चेहरा ताक रहे हैं। सलगो चुप है। पंच फिर पूछते हैं 'यह किसका बच्चा है?' पंच, गांव वालों से पूछते हैं 'यह जिसका बच्चा है, वह खुद खड़ा हो जाए और बताए।' बहुत देर चुप्पी के बाद सोमा बूढ़ा धीरे से उठा। बोला, 'पंचो, बच्चा मेरा है।' सोमा बूढ़ा के पहले से ही चार जवान बेटे हैं। पत्नी मर चुकी है। बच्चे कुछ न कुछ काम करते हैं। सबकी शादी हो चुकी है। पंच ने निर्णय लिया और फैसला सुनाया 'सलगो के पहले से ही दो बच्चे हैं। इसलिए उसके पेट में जो बच्चा है वह सोमा बूढ़ा को दे दिया जाएगा। पर औरत उसके पास नहीं रहेगी। वह अपने घर में अपने बच्चों के साथ रहेगी।' सोमा बच्चा पाकर खुश था। उसे सलगो की चिंता हुई। उसने पंच से कहा– 'अगर हम सलगो और उसके दोनों बेटों को भी अपने घर ले आएं तो इससे आनेवाले बच्चे को अपनी मां भी मिल जाएगी।' पंच ने कहा 'यह तभी संभव होगा जब सोमा के जवान बेटों को सलगो और उनके दोनों बेटों के अपने घर में आने से एतराज न हो।' सोमा के जवान बेटों ने कहा–'उन्हें सलगो, आने वाले बच्चे और सलगो के दो बेटों के आने से कोई परेशानी नहीं है।' पंच ने पूछा–'क्या वे उनके भरण–पोषण का जिम्मा भी लेने को तैयार हैं?' इस पर सोमा के जवान बेटों ने हामी भरी। इसी के साथ पंचायत उठ गई। पंच के निर्णय के मुताबिक गर्भवती सलगो अपने दोनों बेटों को लेकर सोमा के घर आ गई। सलगो ने एक लड़की को जन्म दिया। लड़की के जन्मने से सोमा खुश था। उन्होंने उसका नाम रखा 'चंदो।'

गांव में दूसरी चर्चा थी। स्त्रियां कह रहीं थीं– ''बच्चा तो सोमा बूढ़ा का है नहीं। लेकिन सोमा ने भरी पंचायत में बच्चे को स्वीकार लिया। सुना है जिधर गाय–बकरी चराने जाती थी सलगो, उधर ही किसी रिश्तेदार ने यह किया है।''

सोमा के लड़के कहते "बाबा बूढ़ा है। बच्चा उसका तो हो नहीं सकता। पता नहीं किसका बच्चा ढोकर आ गई?" इसलिए चंदो जब जन्मी, सोमा को छोड़कर किसी को कोई खुशी नहीं हुई।

एक दिन खेतों की पगडंडियों पर चंदो भागी जा रही थी। उसके पीछे कुछ लड़के थे। अभी हाल ही में वह दिल्ली से गांव लौटी थी। 15 साल की उम्र में ही वह दिल्ली काम करने चली गई थी। गांव की एक महिला उसे दिल्ली में काम लगवा देने के नाम पर लेकर गई थी। लेकिन वहां उसे देह के धंधे में लगा दिया गया। पैसा तो एक मोटी महिला लूट लेती थी। कहती थी 'घर जाते समय लेते जाना अपना सारा पैसा।' एक दिन वहां से चंदो भाग निकली। लौटकर जब गांव आई तो दिल्ली में ही अपने अनचाहे बच्चे को गिराकर लौटी। ताकि गांव वालों के तानों से बच सके। लेकिन उड़ती खबर पहुंच ही जाती है गांव।

उसके भाइयों ने कभी उसे अपनी बहन नहीं माना। वे मानते थे कि वह नाजायज संतान है। इसलिए उन्होंने सोचा, जब दिल्ली में लोग उससे पैसे कमा सकते हैं तो वे भी क्यों नहीं पैसे बनाएं। वे किसी आदमी से उसका सौदा तय कर चुके थे। उसे उस दिन बेचने ले जाने वाले थे। आधे रास्ते से चंदो उनको चकमा देकर भाग निकली थी।

भागते–भागते चंदो हांफने लगी थी। दूर एक गांव दिख रहा था। उस गांव में फग्गू रहता था। उसे याद आया फग्गू की मां ने दिल्ली के दलालों से उसका बकाया पैसा निकलवाने में मदद की थी। जाते वक्त उन्होंने कहा था–'कोई भी दिक्कत हो तो सीधे हमारे घर घुस जाना। बाद में जो होगा देखा जाएगा।' इतना याद

जसिंता केरकेट्टा

करते ही वह उस गांव की ओर दौड़ने लगी। दौड़ते–दौड़ते घुस गई फग्गू के घर। लड़के रुक गए। 'चला, घूरा रे, ढुकु घुईस गेलक।' वे अपने गांव लौटने लगे। गांव में कोई भी लड़की इस तरह किसी लड़के के घर चली जाए और रहने लगे तब लड़की पक्ष वाले समझ लेते हैं कि वह ढुकु चली गई है। फिर बाद में गांव में खान–पान होता है। यह भी विवाह करने के कई तरीकों में एक है। ढुकु घुसने को गांव के लोग सम्मानजनक नहीं मानते, लेकिन ढुकु घुस चुकने के बाद मिलने वाले भोज–भात में मुर्गा खूब खींचते हैं। खाना चाहे सम्मानजनक काम के लिए मिले या अपमानजनक काम के लिए। खाना खाते वक्त इन बातों का कोई मतलब नहीं रह जाता। भोज दिया जाए तो सारी बातें ठीक हो जाती हैं और भोज नहीं मिले तो सौ वर्षों तक भी ताने मारते रहेंगे लोग। पुरानी बातें होती ही रहेंगी।

उस दिन चंदो जब भागते हुए फग्गू के घर ढुक गई थी तब फग्गू ने अपनी मां से कहा था, 'अयो, गांव वाले उसे बदचलन कहते हैं। रंडी भी। मैंने सुना है। मैं लाख बुरा हूं। इससे शादी करके उसका भला तो करूंगा। तुम इसी से मेरी शादी करवा दो।' फग्गू के परिवार से लोग लड़की के गांव गए। उनसे कहा– 'अब वह नहीं लौटेगी। इसलिए गांव में खान–पान और विवाह की आगे की प्रक्रिया शुरू कर देनी चाहिए।' गांव वालों को खिलाने–पिलाने के बाद चंदो, फग्गू के साथ रहने लगी।

लेकिन कुछ ही दिनों के बाद वही फग्गू कहने लगा कि वह रंडी है। दिल्ली में किस–किस के मुंह लग कर आई है। ससुर उसे बेयसी कहते। फग्गू की मां भी उसके पक्ष में कभी नहीं खड़ी हुई। फग्गू अब बात–बात पर उसे मारता पीटता। चंदो भी उसे पलटकर पीटती। पलटकर इस तरह पति पर हाथ उठाने के कारण वह और भी बदनाम हो गई। सास कहती–'मोर बेटा के मारेला।' यह कहते हुए सारे गांव में उसकी बुराई करने लगती। यह सब देखकर चंदो सोचती, यही वे लोग हैं जो घर में जगह देते समय कहते थे कि मेरा भला कर रहे हैं, मेरी मदद कर रहे हैं। ऐसा कह–कह कर थकते नहीं थे। आज रंडी, बैसी, खेलडी कहते किसी की जुबान नहीं थकती।

तीन बच्चों के बाद चंदो फिर पेट से थी और फग्गू रात पीकर आता और संबंध बनाने के लिए जबरदस्ती करता। चंदो ने कई बार संबंध बनाने की अनिच्छा जाहिर की। जब भी वह संबंध बनाने से मना करती, फग्गू घर से बाहर निकल आता और कहता, 'देखा, ई जनी के। मोर संगे सुतेक नी खोजाथे।' फिर तेज आवाज में ससुर गोंदराते रहते, 'अपन मरद संग नी सुतबे तो केकर संग सुतबे।' गांव में फग्गू शराब के नशे में ढिंढोरा पीटता कि चंदो उसके साथ नहीं सोती। गांव की औरतें पत्ता तोड़ते वक्त जंगल में चंदो के बारे में बातें करतीं। कहती– 'दिल्ली कर घुरल छोड़ी। कहां से काबू में रही? अपन मरद संग नहीं सुतेक खोजा थे। दूसर से फंसल आहे।' चंदो चापाकल के पास भी कभी–कभी ऐसी बातें सुनती और चुपचाप पानी भरती रहती। दुबला–पतला शरीर, उस पर हर साल बच्चा। देह जैसे हड्डी हुई जा रही थी।

तीसरा बच्चा फिर होने को था और फग्गू फिर नशे में। होश नहीं कि चंदो बच्चा जनने वाली है। फिर सास अकेली अपने छोटे बेटे की मदद से उसे अस्पताल लेकर गई। इस बार लड़की हुई। घर में सब खुश थे। मगर चन्दो बच्चा जनते–जनते थक गई थी। बच्चों की संख्या बढ़ रही थी और देह में खून घट रहा था। कई बार सोचती, बच्चों को समेट कर भाग जाएगी। मगर बच्चों का मोह। ससुर हमेशा गाली बकते, कहते, 'छउवा मोर खानदान केर डिबरी हिकंए। तोर छउवा ना लागे। मोर बेटा कर छउवा हिकंए। भागेग आहे तो छउवा–पूता के छोईड़ के भाग इ घर से।' एक दिन फग्गू ने जब उसे बहुत पीटा तो वह बच्चों को छोड़कर भाग खड़ी हुई। असम चली गई। अपनी किसी सहेली के पास। देह में बहुत दर्द था। वहां कई दिन लगे उसे ठीक होने में। उसके जाने से इधर सास–ससुर पर बच्चों की जिम्मेदारी आ गई। घर का सारा काम पड़ा रहता। खेत–खलिहान, लकड़ी–काठी का काम भी था। फग्गू और उसका बाप घर के कामों में हाथ बंटाने से रहे। फग्गू की मां दिन–रात सारा काम निपटाती। सबको लगने लगा कि चंदो के चले जाने से घर का काम ज्यादा हो गया है लेकिन काम करने वाले कम हो गए हैं। उसके रहने से सबको समय से खाना तो मिलता था। बच्चे भी पल जाते थे। खेत–खलिहान, जंगल–काठी सबकुछ होता था। अब खेत में काम करने वाला कोई नहीं। आखिरकार उसका पता लगाया गया और चंदो को असम से वापस लाया गया। चंदो को बच्चों की बहुत याद आती थी। इसलिए वह भी आने को तैयार हो गई। पर लौटते वक्त चंदो ट्रेन में सारी रात सोचती रही। देह के धंधे में थी तब तो उसे लगता था अपनी देह पर उसका अधिकार है। पूरे गांव को भोज खिलाकर पत्नी के रूप में जिस आदमी ने घर में रखा, उसके साथ भी कभी भावनात्मक जुड़ाव हो नहीं सका। पर संबंध वह जबरन ही बनाता रहा। कभी उसे लगा ही नहीं कि उसकी देह पर उसका कोई अधिकार भी है। उसकी हां और न का कोई मतलब भी है।

ऊपर से दूसरों की खेत–बारी में बनिहार के रूप में जो भी कमाती, सब वही छीन ले जाता। जब धंधा करती थी तब बैसी सुनना बुरा भी नहीं लगता था। अब जब वह किसी की पत्नी है तब पति, सास–ससुर सब का रोजाना बैसी, खेलड़ी कहना तीर की तरह चुभता है। कई बार सोचती, एक दिन सबकुछ छोड़कर हमेशा के लिए कहीं निकल जाए और फिर कभी पलट कर न आए। पर एक सवाल हमेशा उसके मन में उठता। इस दुनिया में औरत को, घर से बाहर निकलने पर कुछ दिनों का आश्रय मिल सकता है, कोई आश्रम, कोई पेड़ की छाया, स्टेशन में सर छिपाने की जगह, कोई नया मर्द भी। मगर असल में उसे घर कहीं नहीं मिलता। जीवन भर एक छत के लिए भागती ही रहती है। आखिर इस जीवन में औरत का घर कहां होता है?

निर्मला गर्ग

निर्मला गर्ग का जन्म बिहार के दरभंगा में एक मारवाड़ी परिवार में 1955 में हुआ था। उन्होंने बीएससी प्रथम वर्ष की पढ़ाई दरभंगा से की और उसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक किया। उन्होंने रूसी भाषा में डिप्लोमा भी किया हुआ है। निर्मला गर्ग लेखक संगठनों में सक्रिय रही हैं और पहले प्रगतिशील लेखक संघ, फिर जनवादी लेखक संघ में उन्होंने लम्बे समय तक कार्य किया है। सफदर हाशमी की निर्मम हत्या के तुरंत बाद उन्होंने जन नाट्य मंच गाजियाबाद की स्थापना की और तब से लगभग 20-22 प्रदर्शनों का हिस्सा रही हैं। उनका पहला संग्रह 'यह हरा गलीचा' 1992 में प्रकाशित हुआ था। दूसरी किताब 'कबाड़ी का तराज़ू' 2000 में आई। इस किताब के लिए उन्हें हिंदी अकादमी, दिल्ली का कृति पुरस्कार प्रदान किया गया। बकौल निर्मला जी कविता लिखना इनके लिए जुलूस में नारे लगाने, मजदूरों की सभा में शामिल होने, पास-पड़ोस से बातचीत, पौधों में पानी देने, घर की साफ-सफाई करने आदि अन्यान्य कामों की तरह ही एक काम है। यह अन्याय, शोषण, विषमता का प्रतिकार तो है ही, अपनी मुक्ति, अपना आत्म-विस्तार भी है।

निर्मला गर्ग

औरत तो समुद्र होती है

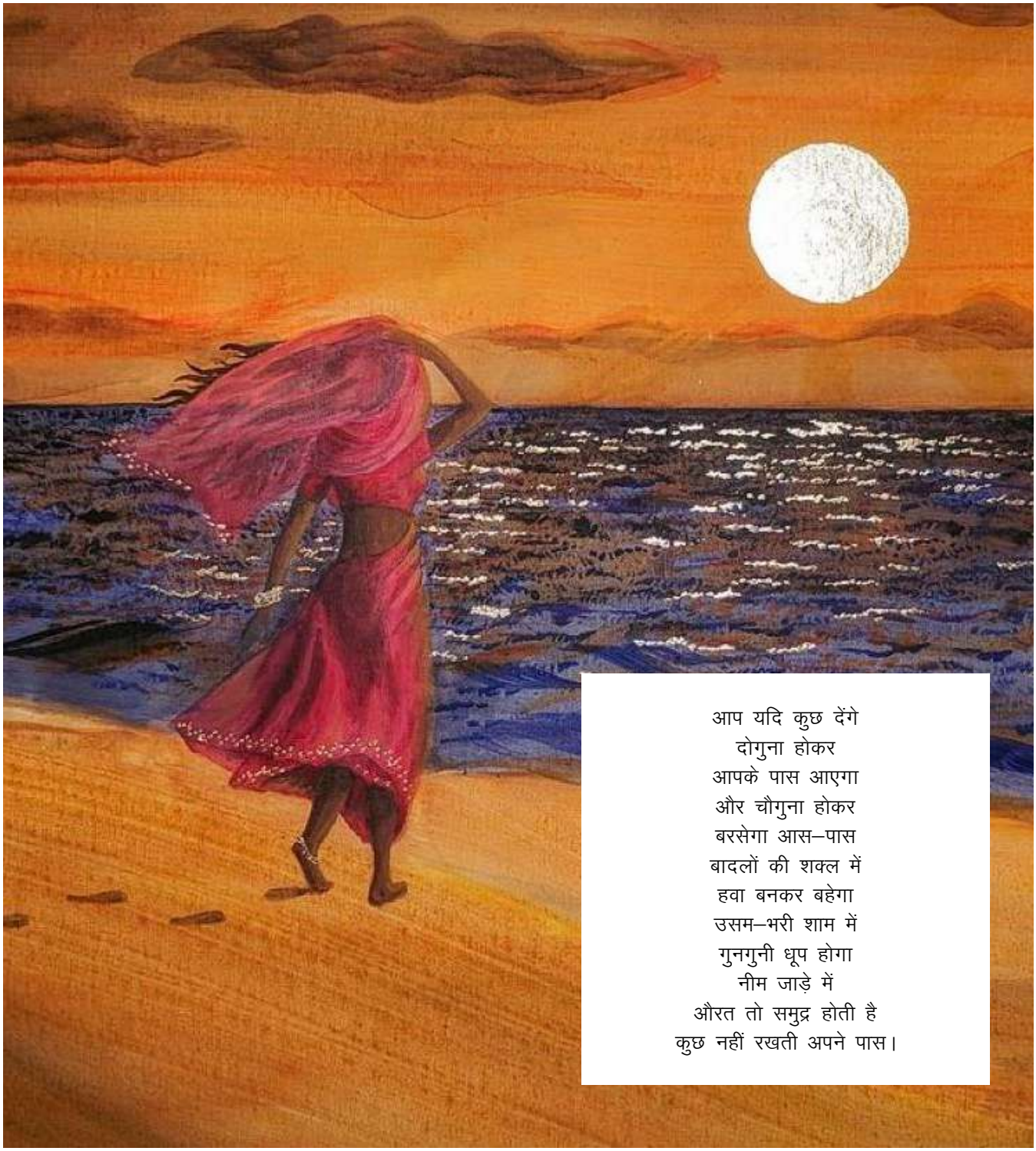

आप यदि कुछ देंगे
दोगुना होकर
आपके पास आएगा
और चौगुना होकर
बरसेगा आस–पास
बादलों की शक्ल में
हवा बनकर बहेगा
उसम–भरी शाम में
गुनगुनी धूप होगा
नीम जाड़े में
औरत तो समुद्र होती है
कुछ नहीं रखती अपने पास।

तसलीमा नसरीन

तसलीमा नसरीन बांग्लादेश की जानी-मानी लेखिका हैं। वे अब तक कई किताबें लिख चुकी हैं और उनके एक उपन्यास 'लज्जा' पर भारत में फिल्म भी बन चुकी है। इस फिल्म के बाद उनके खिलाफ फतवा जारी कर दिया गया था। वे कविताएं भी लिखती हैं। इस्लामिक कट्टरता के खिलाफ लिखने और बयानबाजी की वजह से वे मुस्लिम कट्टरपंथियों के निशाने पर रहती हैं। इसी वजह से उन्हें बांग्लादेश से निर्वासित होकर भारत में शरण लेनी पड़ी। यद्यपि वे स्वीडन की नागरिक हैं, लेकिन साल 2004 से भारत में रह रही हैं। तसलीमा पेशे से एक डॉक्टर रही हैं, लेकिन बाद में वे लेखिका बन गई। 25 अगस्त 1962 में बांग्लादेश के मयमनसिंह में पैदा हुई तसलीमा ने बांग्लादेश से ही चिकित्सा में डिग्री ली है। वे नारीवादी आंदोलन से भी जुड़ी हैं, और चाहती हैं कि भारत में हर क्षेत्र में महिलाओं की मजबूत भागीदारी हो।

तसलीमा नसरीन

सिंदूर

भाग्य बदलने के लिए कृष्णनगर से दिल्ली चले आये थे सलिल दास। खेती की जमीन जैसी थी, उसे उसी रूप में ही छोड़कर। वह जमीन जो फसल दे रही थी, उससे जीवन निर्वाह करना कठिन हो रहा था। उन्होंने अपने भाई को अपनी जमीन बिना किसी लिखा–पढ़ी के ही दे दी थी और कहा था इस 'जमीन को देखना और खेतीबाड़ी करना।' इसके बदले में भाई ने उन्हें हजार पाँच सौ के करीब रुपये दिये थे। वो जो एक बार दिल्ली आये सलिल दास, फिर वापस गाँव नहीं लौटे। दिल्ली में आकर उन्होंने गो. विंदपुर की बस्ती में कमरा किराये पर लिया था। उसी बस्ती में ही उनके गाँव के दो जान–पहचान वाले लोग थे, जिन्होंने उनके रहने और नौकरी की व्यवस्था कर दी थी।

सलिल दास चित्तरंजन पार्क के बी ब्लाक में गार्ड की नौकरी कर रहे थे और उनकी बेटी प्रमिला एवं पत्नी आरती दूसरों के घरों में खाना बनाने तथा साफ–सफाई का काम कर रही थीं। इससे उनके रहने और खाने का गुजारा ठीक से चल जाता था। इसी से कुछ पैसे भी जोड़ लिए थे उन्होंने प्रमिला के विवाह के लिए। प्रमिला का विवाह तुगलकाबाद में एक बंगाली परिवार में ही संपन्न हुआ था, जिस परिवार के साथ प्रमिला का रिश्ता जुड़ा था, वे स्वयं भी कृष्णनगर के रहनेवाले थे। माता–पिता ने देख–सुनकर ही प्रमिला का विवाह तय किया था। क्या देखा था, क्या सुना था, प्रमिला नहीं जानती। ससुराल में जाने के सात दिन बाद से ही उसने देखा था कि परिवार के बारह सदस्यों के सभी काम वह अकेले ही कर रही थी। पान में चूना लगाकर मुंह में भरने के साथ ही मुंह से गालियों की बौछार शुरू हो जाती थी सासू माँ की। दूसरी तरफ प्रमिला का पति था जो कभी रात को लौटता और कभी नहीं भी। अगर कभी लौटता भी तो माताल (नशे में धुत्त) होकर। प्रमिला ने इस नारकीय जीवन को उन्नीस वर्ष की आयु से ही चुपचाप स्वीकार कर लिया था। इसके अतिरिक्त और चारा ही क्या था उसके पास ! माता–पिता को अपनी आपबीती बताने के बाद भी दास–दासियों वाले जीवन से एक दिन के लिए भी मुक्ति नहीं मिली थी उसे।

प्रमिला को केवल सातवीं कक्षा तक ही पढ़ाया था सलिल दास ने। परंतु पुत्र प्रणय को माध्यमिक (दसवीं तक) तक। दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ही प्रणय केरल के एक कारखाने में चला गया था रोजगार करने। केरल में काम करनेवाले कृष्णनगर के जो जान–पहचानवाले लोग रहते थे, उन्हीं के हाथों प्रणय की खोज–खबर मिल जाती थी सलिल दास को। प्रणय ठीक है, अच्छा कमाता है। पिता ने प्रमिला की शादी के लिए भी कुछ रुपये भेजने को कहा था प्रणय को परंतु उस पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया था प्रणय ने। यहाँ तक कि शादी में भी नहीं आया था वह। पुत्र–पुत्र करके अचेत हो रहे थे सलिल दास और आरती। परंतु वही पुत्र अपने माता–पिता के किसी भी दुःख–तकलीफ में उन्हें एक बार देखने तक नहीं आया। सलिल दास प्रायः ही लंबी साँसें भरकर कहते 'बेटा तो लगता है माँ–बाप के मरने पर मुखाग्नि देने भी नहीं आएगा'। परंतु आरती लंबी साँसें नहीं भरतीं वरन् कहती हैं, 'न आये, हमारी प्रमिला ही हमें मुखाग्नि देगी'।

तसलीमा नसरीन

प्रमिला की शादी के बाद बहुत अकेली पड़ गयी थी आरती। शादी से पहले दोनों माँ–बेटी एक ही साथ काम पर जाती थीं। जे. ब्लॉक में माँ–बेटी साथ–साथ ही काम करती थी। दोनों में से यदि किसी का काम भी पहले समाप्त हो जाता तो वे एक–दूसरे की प्रतीक्षा करतीं। यदि माँ का काम पहले समाप्त हो जाता तो वह पार्क में प्रमिला का इंतेजार करती और यदि प्रमिला का काम समाप्त हो जाता तो वह अपनी माँ को पार्क से साथ लेती हुई ई–रिक्शा से घर लौट जाती। वे दिन अब कहाँ ! प्रमिला के ससुराल में क्या हो रहा है, इन सबकी खबर मिलती रहती है आरती को। अब तो आरती को उस दिन की प्रतीक्षा है, जब प्रमिला के दुर्दिन हमेशा दृ हमेशा के लिए कट जाएँ, लेकिन उसके दुर्दिन काटे नहीं कटते। एक दिन प्रमिला को उसके सास–ससुर, देवर, ननद और पति सबने मिलकर खूब मारा। उसकी वजह यह थी कि निताई ने दो हजार रुपये तकिये के नीचे रखी थी, जो उसे मिल नहीं रहा था। उन्हें संदेह है कि दो दिन पहले प्रमिला की माँ प्रमिला से मिलने आयी थीं, जरूर प्रमिला ने वह रुपये अपनी माँ के हाथों घर भिजवा दी होगी। एक तरफ सास थी जिनका कहना था कि उनके कान की सोने की बालियाँ अलमारी से गायब है तो दूसरी ओर ननद ने भी आकर कहा कि उसका चाँदी का हार भी उन्हें कहीं मिल नहीं रहा है। पिटाई के कारण प्रमिला को कंपकंपी के साथ बुखार आ गया था, जिसकी किसी को परवाह नहीं। प्रमिला तीन दिन तक बिस्तर पर पड़ी रही बुखार से, लेकिन किसी ने उसे कुछ खाने तक को नहीं दिया था। इस बात की खबर मिलते ही आरती अपने साथ घर ले गयी थी प्रमिला को। प्रमिला की सास पूरे मोहल्ले को सुना–सुनाकर कहने लगीं दृ ये डायन फिर कभी जैसे लौटकर न आये इस घर में।

प्रमिला अपने माता–पिता के पास पिछले दो महीने से रह रही है। लेकिन निताई नहीं आया उसे लेने। उसके आने की उम्मीद भी अब छोड़ दी थी प्रमिला ने और फिर से दूसरों के घरों में काम करने निकल पड़ी प्रमिला। प्रातःकाल उठकर ही प्रमिला अच्छे कपड़े, जूते पहनकर अपने घने काले बालों का जूड़ा बनाकर और माँग में मोटा सिंदूर लगाकर, काँधे पर वैनिटी बैग लिए पैदल निकल पड़ती जल्दी–जल्दी ई–रिक्शा पकड़ने। इस प्रकार एक वर्षा ऋतु निकलकर दूसरी वर्षा ऋतु भी आ गई लेकिन निताई ने प्रमिला के साथ कोई संपर्क नहीं किया था। सलिल दास पिछले दो वर्षों में छह बार जा चुके थे प्रमिला के ससुराल में और उनके ससुर से पूछा था कि क्यों वे लोग प्रमिला को वापस ससुराल नहीं ला रहे हैं। छठी बार भी उन्हें एक ही उत्तर मिला था निताई के चाहने पर ही वो लोग उसे ले आयेंगे, लेकिन समस्या यह है कि निताई नहीं चाहता और निताई की माँ भी नहीं चाहती। प्रमिला के ससुर की किराने की दुकान है। चलती भी अच्छी है। सलिल दास ने सोचा था बेटी को और दुःख का मुंह नहीं देखना पड़ेगा। क्या सोचा था और क्या हुआ ! सलिल दास प्रमिला को अभाव मिटाने के लिए नहीं बल्कि लोकनिंदा की वजह से भेजना चाहता है ससुराल। यदि समाज का डर नहीं होता तो वह उसे ताउम्र अपने पास ही रखता। बेटी को अपने पास पाकर दुखी नहीं थे सलिल दास। दूसरी ओर बेटा था जो होकर भी नहीं है। देखा जाए तो संतान के रूप में बस यही दुखियारी लड़की है उनकी। जो अपना खर्च चलाने के लिए पिता के आगे हाथ फैलाने की बजाय दूसरों के घर पर काम करती है। प्रमिला हर महीने अपने खर्चे के रुपये रखकर बाकी महीने के पैसे अपने माता–पिता के हाथों में दे देती है।

ससुराल छोड़कर आने के कुछ महीने बाद प्रमिला ने एक संतान को जन्म दिया। घर पर ही दाई माँ आ गई थीं और प्रियंका का जन्म हुआ। उस समय ससुराल के सभी लोगों को सूचना दे दी गई थी, विशेषकर निताई को। लेकिन बच्चे को देखने कोई नहीं आया। प्रमिला ने अपने पति के व्हाट्सएप पर प्रियंका की छवि भेज दी थी। परंतु उधर से कोई उत्तर नहीं मिला उसे। प्रमिला सोचने लगी, भले ही कोई उत्तर न दे निताई फिर भी प्रियंका के पिता होने के नाते उनका यह अधिकार है कि वह अपने बच्चे का मुंह देखे। इसी बीच प्रमिला को एक दिन खबर मिलती है कि निताई दूसरी शादी कर रहा है। एक पत्नी के रहते हुए फिर से विवाह ? किसी–किसी का तो यह भी कहना है कि दूसरी शादी क्यों नहीं कर सकते, लिखा–पढ़ी करके विवाह न हो तो, पंडित के मंत्रपाठ से विवाह करवाने पर ऐसा ही होता है। इस घटना के बाद आरती ने सोचा था कि प्रमिला अब शायद जीवन में सिंदूर कभी न लगाए। परंतु प्रमिला ठीक पहले की तरह ही माँग भरकर सिंदूर लगाने लगी थी।

प्रमिला अपने आप से सवाल कर रही थी कि आखिर क्यों वह सिंदूर लगाती है। अपने आस–पड़ोस की दो औरतों से प्रमिला ने बिना किसी संकोच, बिना किसी संदेह के कहा था कि वह निताई से बहुत प्रेम करती है इसलिए सिंदूर लगाती है। लेकिन प्रमिला स्वयं इसका जो उत्तर जानती है, वह बहुत भिन्न है। जिस प्रकार निताई ने सबके साथ मिलकर उसके ऊपर झूठे आरोप लगाकर उसकी पिटाई की थी, उस आदमी से और बाकी कुछ भी किया जा सकता है परंतु उससे प्रेम नहीं किया जा सकता। क्या निताई भी उससे प्रेम करता है ? इसका उत्तर प्रमिला जानती है कि वह उससे प्रेम नहीं करता। क्या प्रमिला को अभी भी उम्मीद है कि निताई उसे एक दिन लेने आएगा ? एक वक्त था जब वह ऐसा सोचती थी परंतु दूसरी शादी करने के बाद उसने इस उम्मीद को भी जलांजलि दे दी थी। तो फिर सिंदूर क्यों?

सिंदूर इसलिए क्योंकि सिंदूर लगाने से उसे सड़क पर आते–जाते लोग सम्मान देते हैं। ई–रिक्शा चलनेवाले लोग उसे भाभी कहकर बुलाते हैं। यहाँ तक कि हाट–बाजार में भी उसे अपने लिए भाभी शब्द ही सुनाई देती है। जिन घरों में प्रमिला काम करती है उन घरों की भद्र महिलाएँ भी उसी की तरह सिंदूर, शाखा और

पोला पहनकर घरों से बाहर घूमने जाती हैं। प्रमिला को देखने से लगता नहीं कि वह उनसे भिन्न है। प्रमिला भी सिंदूर, शाखा और पोला पहनकर उन्हीं की तरह अपना सिर ऊँचा करके घूमती है। जब उसके माथे पर सिंदूर नहीं था, तब न जाने कितने लोग उसके आगे हाथ बढ़ाते, छाती को नोचते, जान–बूझकर देह के ऊपर गिरते, नितम्बों पर चुटकी काटते और रुपये का लालच दिखाकर शारीरिक संबंध बनाने की माँग तक कर डालते थे।

प्रियंका को सुबह–सुबह ही आरती के हाथों सौंपकर प्रमिला निकल जाती है घरों में काम करने। अब आरती को प्रियंका की देखभाल करनी पड़ती है इसलिए आरती ने सुबह खाना बनाने का काम छोड़ दिया है। पहले एक ही घर में काम करती थी प्रमिला परंतु अब पाँच घरों में करती है। सुबह सात बजे से लेकर बारह बजे तक तीन घरों में खाना बनाने का काम, दो बजे से लेकर शाम को पाँच बजे तक दो घरों में झाड़ू–पोंछा का काम करती है प्रमिला। इससे महीने के बारह हजार रुपये कमा लेती है वह। प्रमिला दूसरों के घरों में काम करने के साथ–साथ अपने पिता के घर का काम भी करती है और ये बिलकुल मुफ्त है। ससुराल के घर का काम भी बिना पैसे का ही था। लेकिन पिता. जी के घर और ससुराल के घर के कामों में जमीन–आसमान का अंतर था। पिता के घर में काम न करने पर भी उसे कोई लात और झाड़ू से नहीं मारते, न ही गाली–गलौज करते और न ही कोई पीटते। इस घर में हंसी–खुशी से दिन बीतते हैं प्रमिला के। घर के रूप में एक ही कमरा है, एक ही चारपाई जिसपर सलिल दास सोते हैं बाकी नीचे जमीन पर बिस्तर लगाकर आरती, प्रमिला और प्रियंका सोती हैं।

एक रात निताई आया। नींद से आँखें बंद हो रही थी प्रमिला की, ऐसे में आरती के धक्का देकर जगाने से हड़बड़ाकर उठ बैठी थी प्रमिला। क्यों निताई क्यों ? निताई आया है प्रमिला के साथ जरूरी बात करने। सलिल दास ने आरती से पूछा क्या बात करने आया है वह प्रमिला के साथ ? आरती बोलीं, क्या बात करनी है ये मैं कैसे जानूँगी!

''तो फिर कौन जानेगा?''

''जानेगी प्रमिला।''

''लेकिन इतने दिनों बाद क्या बात करनी है उसे प्रमिला से?''

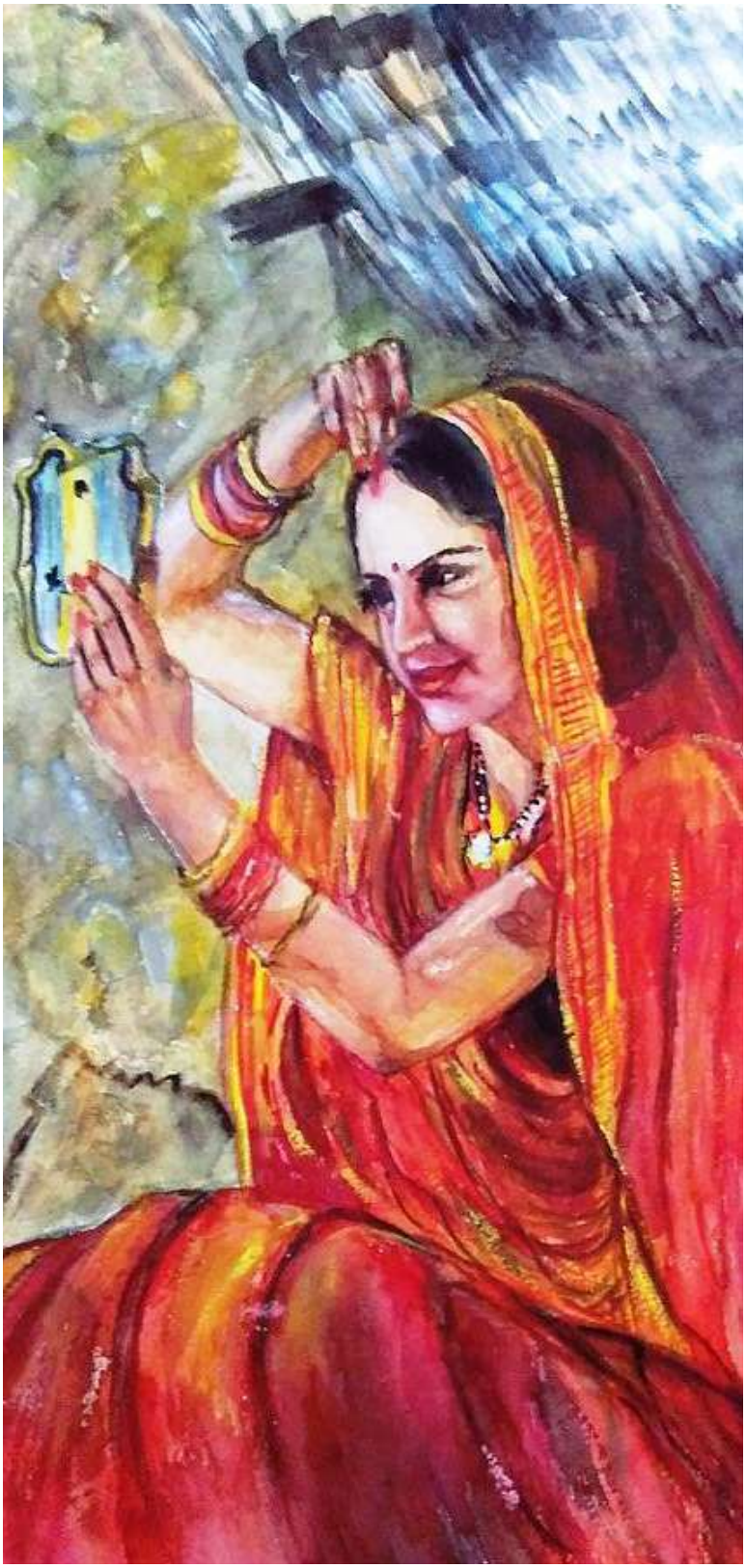

चित्रः fineartamerica.com

तसलीमा नसरीन

''वो तुम प्रमिला से ही पूछो।''

प्रमिला तबतक घर के बाहर सेमल के पेड़ के नीचे जा खड़ी हुई थी। प्रमिला बोली, ''क्यों आये हो, क्या चाहिए?''

''देखने आया हूँ। सुनने में आया बहुत मस्ती कर रही हो।''

''मस्ती कब की, बच्चा पाल रही हूँ।''

''वो छोटी बच्ची तो लड़की है। उसको पालकर क्या फायदा!''

''यही सब फालतू बातें करने आये हो यहाँ?''

''आया हूँ, तेरी बहुत याद आ रही थी न इसीलिए।''

''तुम्हें मेरी याद आयी वो भी दो साल के बाद! असली वजह बताओ। अगर तुम बच्चे को ले जाने की सोच रहे हो तो वो मैं तुम्हें माँगने पर भी नहीं देनेवाली।''

निताई ने ठहाका मारकर कहा, ''किसकी–न–किसकी औलाद है, मुझे कौन–सा दुःख है, जो इसे लेने आऊँगा?'' हँसते ही मुँह से शराब की गंदी बदबू प्रमिला के नाक में जा घुसी थी। इस बदबू को वह बहुत अच्छे से पहचानती थी। अक्सर रात को उसे इसकी बदबू आती थी। शराब पीकर क्या ही तो पीटता था निताई उसे। प्रमिला को बिना मारे निताई की शराब भी कहाँ हजम होती थी।

''सुनने में आया बहुत पैसे कमा रही हो।''

''पैसे तो चाहिए ही। तुमने तो एक रूपया भी नहीं दिया। बच्ची हुई। उसे पालने में खर्चा नहीं है क्या?''

''कुछ रुपये दो।''

''तुम्हें देने के लिए मेरे पास रुपये नहीं हैं।''

''झूठ क्यों बोल रही है?''

''रुपये दे, नहीं तो चिल्लाऊंगा।''

''चिल्लाओ। उससे किसी का क्या?''

निताई सच में चिल्लाने लगा जिससे घिंजी बस्ती के सभी सुनें।

''छिनार, मागी प्रमिला न जाने किसका–न–किसना बच्चा पेट में पाली हुई थी। मैं निताई, उसका पति, मैं ये बता देना चाहता हूँ कि यह बच्चा मेरा नहीं है।''

प्रमिला ने दोनों हाथों से अपने कान बंद करते हुए घर की ओर दौड़कर दरवाजे बंद कर दिये। उधर घर के भीतर उसके माता–पिता यह सु–खबर सुनने के लिए बेचैन हैं कि दोनों में क्या बातें हुईं? उन्हें लगा शायद निताई को अपनी गलती का एहसास हुआ है, इसीलिए वह प्रमिला और बच्ची को लेने आया होगा।

''क्या रे, क्या बोला, प्रियंका को तो कभी देखा नहीं उसने, देखना चाह रहा है? घर में क्यों नहीं लेकर आयी?''

''पूरे मोहल्ले में चिल्ला–चिल्लाकर कह रहा है कि प्रियंका उसकी औलाद नहीं है। पैसे माँगने आया था, पैसे नहीं दिये, इसलिए चिल्ला रहा है।''

''तुम्हें लेने नहीं आया था?''

''मुझे कहाँ लेकर जाएगा, घर में तो उसकी एक और बीवी है।''

दूसरे दिन रात को फिर से आया था निताई। रात करीब ग्यारह बजे। मुँह से शराब की बदबू आ रही थी। अबकी बार सेमल के पेड़ के नीचे नहीं गयी थी प्रमिला, बल्कि घर के चौखट पर ही खड़ी होकर बात कर रही थी। घर के भीतर सलिल दास और आरती गहरी नींद में भले ही न हों लेकिन आँखें बंद किये हुए जरूर थे। प्रियंका सो चुकी थी। प्रमिला निताई से जानना चाह रही थी कि क्यों आया था वह? निताई का जवाब पहले जैसा ही

''बहुत रुपये कमा रही हो। कुछ रुपये दो।''

''मेरी मेहनत की कमाई है, तुम्हें दूँ किसलिए?''

''सिंदूर लगाती हो, देना तो होगा ही?''

''सिंदूर मैं तुम्हारे लिए नहीं लगाती।''

''तो फिर किस यार के लिए लगाती हो, बताओ।''

''किसी भी यार के लिए नहीं लगाती।''

''तो फिर किसलिए लगाती हो?''

''मेरी इच्छा होती है, इसलिए लगाती हूँ।''

''पैसे नहीं दोगी तो सबसे कह दूँगा कि तुम वेश्या हो।''

''काम करके खाती हूँ, वेश्या बनने जाऊँगी किसलिए?''

''तो फिर रुपये दो।''

प्रमिला ने अपने पर्स से इक्कीस रुपये निकाले और निताई के हाथ में देते हुए बोली, ''ये रुपये मैंने तुम्हारे बच्चे के दूध खरीदने के रुपये में से दिए हैं। फिर कभी मत आना यहाँ पैसे माँगने के लिए बोल देती हूँ। आने से मैं पुलिस को बुलाऊँगी।''

''बुलाकर देखना तुम, देखते हैं पुलिस किसे पकड़कर ले जाती है। मैं कह दूँगा कि मेरे घर से रुपये–पैसे, गहने–जेवर सब लेकर भागी हो तुम। उसके बाद जेल की जो भात खाना पड़ता है, उसको याद रखना।''

पूरी रात प्रमिला सो नहीं सकी। इसी कारण सुबह जब काम पर जाती तो उसे झपकियाँ आने लगतीं, थकान से देह टूट रही थी। ऐसे कैसे उसका काम चलेगा! उसे हमेशा इस बात का डर लगा रहता कि निताई जरूर उसका कुछ–न–कुछ अहित करेगा। ससुराल में उससे कोई लड़ाई–झगड़ा नहीं करेगा, इसी शर्त पर प्रमिला को वापस ले जाने की बात कहकर आये थे सलिल दास। लेकिन निताई ने किसी भी शर्त पर अमल नहीं किया। ऊपर से न तो कुछ बोला न सुना, ये भी नहीं कि दो बातें ही अच्छे से करे, सुलह करने भी नहीं और न ही प्रमिला को वापस लेने और न ही बच्ची को देखने के लिए आया है, आया है तो क्या रुपये माँगने। शराब के नशे में धुत्त हुए इंसान को हित–अहित का ज्ञान नहीं रहता है। ज्ञान था ही कब निताई को! प्रमिला ने अनुमान लगा लिया था कि निताई उसके पास सिर्फ शराब के लिए ही पैसे माँगने आता है। लेकिन एक आदमी के लिए उसे शराब का पैसा इकट्ठा करना ही क्यों पड़े? क्या रिश्ता है उसका इस आदमी के

साथ? प्रियंका के पिताजी हैं, इससे अधिक तो और कोई संबंध नहीं है दोनों के बीच। जिसने कभी अपने बच्चे को दूध नहीं पिलाया, उसके लिए खाने का सामान नहीं खरीदा, बच्चे को कभी गोद नहीं लिया, कभी प्यार से उसे दुलारा नहीं, कभी अपनी गोद में लेकर उसे सुलाया नहीं, कभी बच्चे की किलकारियां तक नहीं सुनी, बच्चे का कभी कपड़ा–लत्ता नहीं धोया, बच्चा क्या वास्तव में उसका है?

इन सबके बाद भी कई बार आया है निताई पैसे माँगने। इक्कीस रुपये नहीं लेगा वह। उसे पचास रुपये चाहिए। प्रमिला ने भी उसे पचास रुपये ही दिए थे। सलिल दास ने अबकी बार डंडा रखा है दरवाजे के पीछे, निताई को मारने के लिए। इस बार आने से ही पीटेगा। एक दिन वाकई में आ धमका था निताई, प्रमिला इस बार उसके सामने नहीं आयी थी, उसके पिताजी ने ही उसे मारकर भगाया था।

''प्रमिला सुबह जिस घर में खाना बनाने जाती है, वह उसका बहुत पुराना घर है। शादी से पहले भी वह इसी घर में खाना बनती थी। घर की मालकिन अक्सर प्रमिला से बातें किया करती थीं। प्रमिला को उसके ससुरालवालों ने जब पीटा था, उसके पति ने दूसरी शादी कर ली है, बच्चे का कोई खर्चा वह नहीं देता, ऊपर से खुद के शराब पीने के लिए रुपये माँगने आता है, ये सारी बातें जानती हैं प्रमिला की मालकिन, उसने उन्हें सबकुछ बता रखा है।''

मालकिन ने एक दिन उससे पूछा, ''तुम्हें तलाक दिया है?'' प्रमिला अपना सिर पकड़कर बोलने लगी, ''नहीं, नहीं दिया है।'' ''हिन्दुओं में तो दो पत्नी रखने का नियम नहीं है।''

''वो भला मैं क्या जानूं! दूसरी शादी तो कर ही ली उसने!''

''तुम्हें तलाक दिये बिना, दूसरी शादी करना गैरकानूनी है। तुमलोगों की शादी तो रजिस्ट्री करके हुई है न?''

''लगता नहीं है?''

''नहीं होने पर तो पहली शादी भी गैरकानूनी है।''

प्रमिला ने उनकी बातों को हंसकर टाल दिया था। शादी तो मंदिर में जाकर माला पहना देने से ही हो जाती है। ये भला गैरकानूनी क्यों हो! मालकिन ने प्रमिला से एक दिन फिर पूछा, तुम सिंदूर क्यों लगाती हो?

प्रमिला ने कहा था, शादी हुई है, इसलिए लगाती हूँ।

''ये कैसी शादी है? पति के साथ केवल दो महीने रही। उसके बाद से प्रायः दो साल से अकेली हो। लड़की को भी खुद ही अकेली पाल रही हो। सिंदूर को पोंछ डालो।''

''पोंछ डालो बोलने से ही तो पोंछ नहीं दिया जाता न। हिन्दू लड़कियों की शादी एक ही बार होती है। शादी होने के बाद सिंदूर–शाखा पहनना ही पड़ता है।''

''किसने कहा एक बार ही शादी होती है ? मैं तो हिन्दू हूँ, मेरे पहले पति के साथ रिश्ता टूट गया तो मैंने फिर से शादी की है।''

''हमलोगों की जाति मैं ऐसा नहीं होता है।''

''तुम्हारी जात क्या है, सुनूँ जरा?''

प्रमिला ने कोई उत्तर नहीं दिया। मालकिन ने फिर से सवाल किये

''तो क्या तुम पूरी जिंदगी अकेले ही रहोगी? हल्की सी मुस्कान के साथ प्रमिला ने कहा, ''अकेली कहाँ हूँ? माँ–पिताजी हैं न।'' ''लेकिन माँ–पिताजी तो उम्रभर नहीं रहते न। उनके ना रहने पर?''

प्रमिला फिर से हंस दी और बोली, ''प्रियंका तो है ना?'' इस बार पूजा में मालकिन प्रमिला को एक अच्छी साड़ी देंगी, यह जानकर प्रमिला को बहुत खुशी हुई। इसके बाद उसकी एक और ख्वाहिश है कि, ''आप जो सिंदूर लगाती हैं न, मुझे वही सिंदूर की एक डिबिया चाहिए''। मालकिन ने उसे लाल सिंदूर और लाल साड़ी दी थी। दुर्गा पूजा में प्रमिला उसी सिंदूर को मोटा करके अपने माँग में भरकर निकल गई थी पंडालों में घूमने। उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था। ये कोई सस्ता सिंदूर नहीं है। यही सिंदूर उसकी मालकिन भी लगाती हैं। पंडाल देखते हुए उस भीड़ में ही न जाने कितने लोगों ने उसे भाभी कहकर संबोधित किया था। कोई कहता– भाभी थोड़ी सी जगह दीजिए, भाभी उधर जाइए, उधर ज्यादा भीड़ नहीं है, कोई कहता ऐ भाभी को बैठने दो, कुर्सी दो। छोटे–बड़े सभी उससे स्नेह करते हैं। यही स्नेह सभी से चाहती है प्रमिला। प्रमिला देखने में सुंदर है, रंग भी गोरा है। उसे देखकर कोई ये नहीं कह सकता कि वह दूसरों के घर में काम करती है। उसे देखकर सबको यही लगता है कि उसका पति हो सकता है आसपास ही है, वह आगे–आगे चल रहे होंगे, भाभी ही पीछे हो गई होंगी।

दूसरों के घर काम करने से न जाने कितनी ही गालियाँ खानी पड़ती है, ससुराल में भी गालियाँ खाती थी प्रमिला। आजकल माता–पिता के घर भी गालियाँ सुनती है प्रमिला। जबतक उसके माता–पिता को यह लगा कि एक दिन निताई आएगा प्रमिला को लेने तब तक उसके साथ अच्छा व्यवहार किया था उन्होंने, लेकिन जैसे ही उन्हें यह महसूस होने लगा कि अब निताई कभी नहीं आएगा उसे लेने, उसी दिन से प्रमिला उनके घर में एक अतिरिक्त सदस्य के रूप में समझी जाने लगी। प्रमिला अब उनके कंधे के ऊपर एक बोझ की तरह है। प्रियंका भी अब परेशान करती है, रोती है, सताती है। प्रियंका की देखभाल करनी पड़ती है इसलिए आरती भी अब पहले से कम घरों में काम करती है। काम कम, इसलिए पैसे भी कम मिलते हैं आरती को। उलाहनों का पहाड़ इकठ्ठा हो गया है प्रमिला के लिए। इसलिए कहीं चैन नहीं है प्रमिला को बल्कि बाहर ही शांति मिलती है उसे। अनजान लोगों के बीच में ही शांति मिलती है। ई–रिक्शा के जितने ड्राइवर्स हैं वे सभी प्रमिला की देह के ऊपर किसी को बैठने तक नहीं देते। वे

तसलीमा नसरीन

सभी भाभी का बहुत ख्याल रखते हैं। इनमें से किसी को यह पता भी नहीं कि पति के नाम पर असल में उसका कोई नहीं है। एकमात्र प्रमिला ही जानती है उसके सिंदूर का सच और निताई के साथ या किसी और के साथ का संबंध।

एक दिन उसकी मालकिन ने कहा, ''क्या रे अकेली–अकेली कैसे रहती हो तुम? आदमी तो चाहिए। कोई काम–भावना नहीं है क्या तेरे भीतर?''

प्रमिला ने हंसकर कहा, ''काम–भावना क्या होती है, नहीं जानती! लेकिन हाँ किसी आदमी जात पर अब मुझे कोई विश्वास नहीं है दीदी।''

''कोई अच्छा लड़का देखकर शादी कर लो।''

''क्या जो बोलती हो दीदी, हिन्दू लड़कियों की शादी एक ही बार होती है।''

''तुमलोगों की यह शादी–ब्याह का झमेला मेरे तो पल्ले नहीं पड़ता जिसका न सिर है न पैर।''

''दीदी आप जो कहती हो कि मैं कोई और लड़का देखकर शादी कर लूँ! कोई और लड़का भी निताई की तरह नहीं होगा, इसकी कोई निश्चितता है?''

''मालकिन बोलीं, जीवन में किस चीज की निश्चितता है रे?''

प्रमिला ने अपने सिर को छूते हुए कहा, ''वही तो ! किसी भी चीज की तो निश्चितता नहीं है। यहाँ तक कि जिंदगी की भी कोई निश्चितता नहीं है!''

मालकिन ने इस बार गंभीर होकर प्रमिला से सवाल किये, ''यदि निताई तुम्हें वापस लेने आये या ससुराल से कोई और आये तुम्हें लेने तो क्या तुम जाओगी?''

प्रमिला अपने सिर को छूती है, दायें–बायें देखती है और फिर एक ही बात कई बार दोहराती हुई कहती है, ''नहीं''।

''कोई दूसरा आदमी यदि तुमसे कहे कि वह तुमसे प्रेम करता है, तुमसे शादी करना चाहता है, तो करोगी?''
इस बार भी वह जोर देकर कहती है, ''नहीं''।

''कितने दिन और दूसरों के घर काम करके खा सकोगी?''

''जिस दिन नहीं कर पाऊँगी तो प्रियंका खिलाएगी न! उसे तो स्कूल और कॉलेज में पढ़ाऊँगी।''
इस बार प्रमिला के चेहरे पर तृप्ति की हंसी थी।

सुमन केशरी

सुमन केशरी का जन्म 15 जुलाई, 1958 को बिहार के मुजफ्फरपुर में हुआ। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से सूरदास के भ्रमरगीत पर शोधकार्य के बाद वर्ष 2001 में यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टर्न ऑस्ट्रेलिया, पर्थ से एमबीए भी किया। वह भारत सरकार के प्रशासन संबंधी और कालांतर में अकादमिक कार्यों से जुड़ी रहीं। 2013 में भारत सरकार में निदेशक पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ से मीरा बाई की लोक-सुरक्षित स्मृतियों पर डी लिट में संलग्न हुई। लगभग तीन दशकों के रचनात्मक जीवन में सुमन केशरी ने समकालीन दौर की बेचैनियों को दर्ज किया ही है, परंपरा का परीक्षण और पुनरीक्षण भी किया है। अनछुए विषयों में संश्लिष्ट बोध और सघन संवेदना के साथ प्रवेश को उनके काव्य-मुहावरे की विशिष्ट पहचान कहा गया है। 'याज्ञवल्क्य से बहस', 'मोनालिसा की आँखें', 'शब्द और सपने' और 'पिरामिडों की तहों में' उनके काव्य-संग्रह हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं। उन्होंने 'जेएनयू में नामवर सिंह' नामक पुस्तक का संपादन भी किया है।

सुमन केशरी

द्रौपदी

क्या परिचय दूं मैं अपना
द्रौपदी... पांचाली... कृष्णा... याज्ञसेनी...
सभी संज्ञाएं वस्तुतः विश्लेषण हैं
या सम्बन्ध–सूचक
कभी गौर किया है तुमने
मेरा कोई नाम नहीं

द्रोणाचार्य के अपमान का बदला चुकाने को
पिता को चाहिए था एक
योद्धा
और धृष्टद्युम्न के पीछे
यज्ञाग्नि से औचक ही निःसृत मैं
खुद ही प्रयोजन बनती रही
आजन्म

सुई की नोक बराबर भूमि न पानेवालों के
औरस
अब तक मुझ पर उंगली उठाते नहीं थकते कि
लाखों की मृत्यु का कारण मैं रही
और भी कई कहानियां
बुन ली हैं उन्होंने

महज इसलिए कि मैं कभी रोई नहीं...
गिड़गिड़ाई नहीं
न मां के सम्मुख जब उन्होंने मुझे बांट दिया
पांच बेटों में
और न
कुरूसभा में
जहां पांच–पांच पतियों के बावजूद
मैं अकेली पड़ गई

इतिहास गवाह है कि मैंने केवल
कुछ प्रश्न उठाए
कुछ शंकाएं और जिज्ञासाएं
और तुमने मुझे नाम ही से वंचित कर दिया!

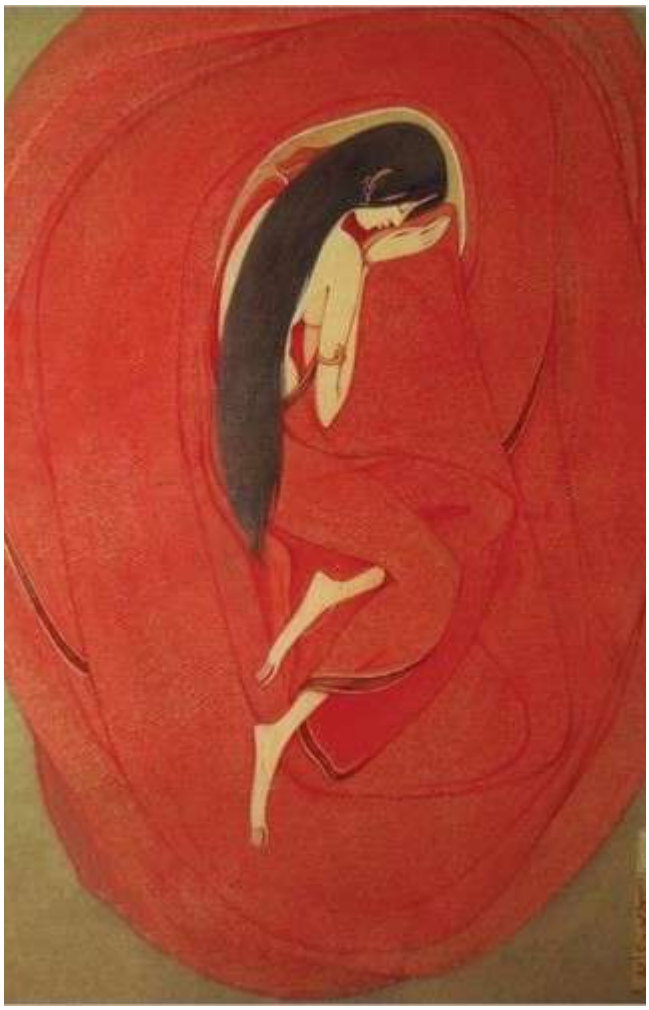

कृष्णा सोबती

हिंदी साहित्य की महान साहित्यकारा और लेखिका के रूप में जानी जाने वाली कृष्णा सोबती का जन्म गुजरात और पंजाब के उस हिस्से में हुआ था जो अब पाकिस्तान में है। साहित्य में इनके योगदान के लिए इन्हें कई पुरस्कारों व सम्मानों से नवाजा गया है, तो वहीं अपनी कुछ रचनाओं के लिए ये विवादों में रहीं। सोबती को प्रसिद्धि उनके उपन्यास 'मित्रो मरजानी' ने दिलाई थी। यह एक ऐसा उपन्यास था जिसमें उन्होंने एक विवाहित महिला की कामुकता का नायाब चित्रण किया था। इन्होंने हशमत नाम से भी लेखन का कार्य किया और हशमत नाम से उसको प्रकाशित भी करवाया, जो कि लेखकों और दोस्तों की कलम के चित्रों का संकलन है। कृष्णा सोबती का जन्म पंजाब प्रांत के गुजरात शहर में 18 फरवरी 1925 को हुआ था, जो अब पाकिस्तान का हिस्सा है। इनकी शिक्षा दिल्ली और शिमला में हुई। उन्होंने शुरूआत में लाहौर के फतेहचंद कॉलेज से अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त की थी, परंतु जब भारत का विभाजन हुआ तो इनका परिवार भारत लौट आया। विभाजन के तुरंत बाद इन्होंने 2 साल तक महाराजा तेज सिंह के शासन में कार्य किया जो कि सिरोही, राजस्थान के महाराजा थे। कृष्णा सोबती की मृत्यु दिल्ली में उनके घर पर लंबी बीमारी की वजह से 25 जनवरी 2019 को हुई।

कृष्णा सोबती

दादी–अम्मा

बहार फिर आ गई। वसन्त की हल्की हवाएँ पतझर के फीके ओठों को चुपके से चूम गईं। जाड़े ने सिकुड़े–सिकुड़े पंख फड़फड़ाए और सर्दी दूर हो गई। आँगन में पीपल के पेड़ पर नए पात खिल–खिल आए। परिवार के हँसी–खुशी में तैरते दिन–रात मुस्कुरा उठे। भरा–भराया घर। सँभली–सँवरी–सी सुन्दर सलोनी बहुएँ। चंचलता से खिलखिलाती बेटियाँ। मजबूत बाँहोंवाले युवा बेटे। घर की मालकिन मेहराँ अपने हरे–भरे परिवार को देखती है और सुख में भीग जाती हैं, यह पाँचों बच्चे उसकी उमर–भर की कमाई हैं। उसे वे दिन नहीं भूलते जब ब्याह के बाद छह वर्षों तक उसकी गोद नहीं भरी थी। उठते–बैठते सास की गंभीर कठोर दृष्टि उसकी समूची देह को टटोल जाती। रात को तकिए पर सिर डाले–डाले वह सोचती कि पति के प्यार की छाया में लिपटे–लिपटे भी उसमें कुछ व्यर्थ हो गया है, असमर्थ हो गया है। कभी सकुचाती–सी ससुर के पास से निकलती तो लगता कि इस घर की देहरी पर पहली बार पाँव रखने पर जो आशीष उसे मिली थी, वह उसे सार्थक नहीं कर पाई। वह ससुर के चरणों में झुकी थी और उन्होंने सिर पर हाथ रखकर कहा था, ''बहूरानी, फूलो–फलो।''कभी दर्पण के सामने खड़ी–खड़ी वह बाँहें फैलाकर देखती–क्या इन बाँहों में अपने उपजे किसी नन्हे–मुन्ने को भर लेने की क्षमता नहीं!

छह वर्षों की लम्बी प्रतीक्षा के बाद सर्दियों की एक लम्बी रात में करवट बदलते–बदलते मेहराँ को पहली बार लगा था कि जैसे नर्म–नर्म लिहाफ में वह सिकुड़ी पड़ी है, वैसे ही उसमें, उसके तन–मन–प्राण के नीचे गहरे कोई धड़कन उससे लिपटी आ रही है। उसने अँधियारे में एक बार सोए हुए पति की ओर देखा था और अपने से लजाकर अपने हाथों से आँखें ढाँप ली थीं। बन्द पलकों के अन्दर से दो चमकती आँखें थीं, दो नन्हें–नन्हे हाथ थे, दो पाँव थे। सुबह उठकर किसी मीठी शिथिलता में घिरे–घिरे अँगड़ाई ली थी। आज उसका मन भरा है। मन भरा है। सास ने भाँपकर प्यार बरसाया था: ''बहू, अपने को थकाओ मत, जो सहज–सहज कर सको, करो। बाकी मैं सँभाल लूँगी।''

वह कृतज्ञता से मुस्कुरा दी थी। काम पर जाते पति को देखकर मन में आया था कि कहे– ''अब तुम मुझसे अलग बाहर ही नहीं, मेरे अंदर भी हो।'' दिन में सास आ बैठी– माथा सहलाते–सहलाते बोली, ''बहूरानी, भगवान मेरे बच्चे को तुम–सा रूप दे और मेरे बेटे–सा जिगरा।'' बहू की पलकें झुक आईं। मेहराँ की गोद से इस परिवार की बेल बढ़ी है। आज घर में तीन बेटे हैं, उनकी बहुएँ हैं। ब्याह देने योग्य दो बेटियाँ हैं। हल्के–हल्के कपड़ों में लिपटी उसकी बहुएँ जब उसके सामने झुकती हैं तो क्षण–भर के लिए मेहराँ के मस्तक पर घर की स्वामिनी होने का अभिमान उभर आता है। वह बैठे–बैठे उन्हें आशीष देती है और मुस्कुराती है। ऐसे ही, बिल्कुल ऐसे ही वह भी कभी सास के सामने झुकती थी। आज तो वह तीखी, निगाहवाली मालकिन, बच्चों की दादी–अम्मा बनकर रह गई है। पिछवाड़े के कमरे में से जब दादा के साथ बोलती हुई अम्मा की आवाज आती है तो पोते क्षण–भर ठिठककर अनसुनी कर देते हैं। बहुएँ एक–दूसरे को देखकर मन ही–मन हँसती हैं। लाड़ली बेटियाँ सिर हिला–हिलाकर खिलखिलाती हुई कहती हैं, ''दादी–अम्मा बूढ़ी हो आई, पर दादा से झगड़ना नहीं छोड़ा।''

मेहराँ भी कभी–कभी पति के निकट खड़ी हो कह देती है, ''अम्मा नाहक बापू के पीछे पड़ी रहती हैं। बहू–बेटियोंवाला घर है, क्या यह अच्छा लगता है?'' पति एक बार पढ़ते–पढ़ते आँखें ऊपर उठाते हैं। पल–भर पत्नी की ओर देख दोबारा पन्ने पर दृष्टि गड़ा देते हैं। माँ की बात पर पति की मौन–गंभीर मुद्रा मेहराँ को नहीं भाती। लेकिन प्रयत्न करने पर भी वह कभी पति को कुछ कह देने तक खींच नहीं पाई। पत्नी पर एक उड़ती निगाह, और बस। किसी को आज्ञा देती मेहराँ की आवाज सुनकर कभी उन्हें भ्रम हो आता है। वह मेहराँ का नहीं अम्मा का ही रोबीला स्वर है। उनके होश में अम्मा ने कभी ढीलापन जाना ही नहीं। याद नहीं आता कि कभी माँ के कहने को वह जाने–अनजाने टाल सके हों। और अब जब माँ की बात पर बेटियों को हँसते सुनते हैं तो विश्वास नहीं आता। क्या सचमुच माँ आज ऐसी बातें किया करती हैं कि जिन पर बच्चे हँस सकें।

बड़ा पोता काम पर जा रहा है। दादी–अम्मा पास आ खड़ी हुई। एक बार ऊपर–तले देखा और बोली, ''काम पर जा रहे हो बेटे, कभी दादा की ओर भी देख लिया करो, कब से उनका जी अच्छा नहीं। जिसके घर में भगवान के दिए बेटे–पोते हों, वह इस तरह बिना दवा–दारू पड़े रहते हैं।''

कृष्णा सोबती

बेटा दादी–अम्मा की नजर बचाता है। दादा की खबर क्या घर–भर में उसे ही रखनी है! छोड़ो, कुछ–न–कुछ कहती ही जाएँगी अम्मा, मुझे देर हो रही है। लेकिन दादी–अम्मा जैसे राह रोक लेती है, ''अरे बेटा, कुछ तो लिहाज करो, बहू–बेटे वाले हुए, मेरी बात तुम्हें अच्छी नहीं लगती!''

मेहराँ मँझली बहू से कुछ कहने जा रही थी, लौटती हुई बोली, ''अम्मा कुछ तो सोचो, लड़का बहू–बेटोंवाला है। तो क्या उस पर तुम इस तरह बरसती रहोगी?''दादी–अम्मा ने अपनी पुरानी निगाह से मेहराँ को देखा और जलकर कहा, ''क्यों नहीं बहू, अब तो बेटों को कुछ कहने के लिए तुमसे पूछना होगा! यह बेटे तुम्हारे हैं, घर–बार तुम्हारा है, हुक्म हासिल तुम्हारा है।''

मेहराँ पर इस सबका कोई असर नहीं हुआ। सास को वहीं खड़ा छोड़ वह बहू के पास चली गई। दादी–अम्मा ने अपनी पुरानी आँखों से बहू की वह रोबीली चाल देखी और ऊँचे स्वर में बोली, ''बहूरानी, इस घर में अब मेरा इतना–सा मान रह गया है! तुम्हें इतना घमंड...!'' मेहराँ को सास के पास लौटने की इच्छा नहीं थी, पर घमंड की बात सुनकर लौट आई।

''मान की बात करती हो अम्मा? तो आए दिन छोटी–छोटी बात लेकर जलने–कलपने से किसी का मान नहीं रहता।'' इस उलटी आवाज ने दादी–अम्मा को और जला दिया। हाथ हिला–हिलाकर क्रोध में रुक–रुककर बोली, ''बहू, यह सब तुम्हारे अपने सामने आएगा! तुमने जो मेरा जीना दूभर कर दिया है, तुम्हारी तीनों बहुएँ भी तुम्हें इसी तरह समझेंगी। क्यों नहीं, जरूर समझेंगी।''

कहती–कहती दादी–अम्मा झुकी कमर से पग उठाती अपने कमरे की ओर चल दी। राह में बेटे के कमरे का द्वार खुला देखा तो बोली, ''जिस बेटे को मैंने अपना दूध पिलाकर पाला, आज उसे देखे मुझे महीनों बीत जाते हैं, उससे इतना नहीं हो पाता कि बूढ़ी अम्मा की सुधि ले।''

मेहराँ मँझली बहू को घर के काम–धन्धे के लिए आदेश दे रही थी। पर कान इधर ही थे। 'बहुएँ उसे भी समझेंगी' इस अभिशाप को वह कड़वा घूँट समझकर पी गई थी, पर पति के लिए सास का यह उलाहना सुनकर न रहा गया। दूर से ही बोली, ''अम्मा, मेरी बात छोड़ो, पराए घर की हूँ, पर जिस बेटे को घर–भर में सबसे अधिक तुम्हारा ध्यान है, उसके लिए यह कहते तुम्हें झिझक नहीं आती? फिर कौन माँ है, जो बच्चों को पालती–पोसती नहीं!''

अम्मा ने अपनी झुर्रियों–पड़ी गर्दन पीछे की। माथे पर

कृष्णा सोबती

पड़े तेवरों में इस बार क्रोध नहीं भर्त्सना थी। चेहरे पर वही पुरानी उपेक्षा लौट आई, ''बहू, किससे क्या कहा जाता है, यह तुम बड़े समधियों से माथा लगा सब कुछ भूल गई हो। माँ अपने बेटे से क्या कहे, यह भी क्या अब मुझे बेटे की बहू से ही सीखना पड़ेगा? सच कहती हो बहू, सभी माएँ बच्चों को पालती हैं। मैंने कोई अनोखा बेटा नहीं पाला था, बहू! फिर तुम्हें तो मैं पराई बेटी करके ही मानती रही हूँ। तुमने बच्चे आप जने, आप ही वे दिन काटे, आप ही बीमारियाँ झेलीं!''

मेहराँ ने खड़े–खड़े चाहा कि सास यह कुछ कहकर और कहतीं। वह इतनी दूर नहीं उतरी कि इन बातों का जवाब दे। चुपचाप पति के कमरे में जाकर इधर–उधर बिखरे कपड़े सहेजने लगी। दादी–अम्मा कड़वे मन से अपनी चारपाई पर जा पड़ी। बुढ़ापे की उम्र भी कैसी होती है! जीते–जी मन से संग टूट जाता है। कोई पूछता नहीं, जानता नहीं।

घर के पिछवाड़े जिसे वह अपनी चलती उम्र में कोठरी कहा करती थी, उसी में आज वह अपने पति के साथ रहती है। एक कोने में उसकी चारपाई और दूसरे कोने में पति की, जिसके साथ उसने अनगिनत बहारें और पतझर गुजार दिए हैं। कभी घंटों वे चुपचाप अपनी–अपनी जगह पर पड़े रहते हैं। दादी–अम्मा बीच–बीच में करवट बदलते हुए लम्बी साँस लेती है। कभी पतली नींद में पड़ी–पड़ी वर्षों पहले की कोई भूली–बिसरी बात करती है, पर बच्चों के दादा उसे सुनते नहीं। दूर कमरों में बहुओं की मीठी दबी–दबी हँसी वैसे ही चलती रहती है। बेटियाँ खुले–खुले खिलखिलाती हैं। बेटों के कदमों की भारी आवाज कमरे तक आकर रह जाती है और दादी–अम्मा और पास पड़े दादा में जैसे बीत गए वर्षों की दूरी झूलती रहती है।

आज दादा जब घंटों धूप में बैठकर अंदर आए तो अम्मा लेटी नहीं, चारपाई की बाँह पर बैठी थी। गाढ़े की धोती से पूरा तन नहीं ढका था। पल्ला कंधे से गिरकर एक ओर पड़ा था। वक्ष खुला था। आज वक्ष में ढकने को रह भी क्या गया था? गले और गर्दन की झुर्रियाँ एक जगह आकर इकट्ठी हो गई थीं। पुरानी छाती पर कई तिल चमक रहे थे। सिर के बाल उदासीनता से माथे के ऊपर सटे थे।

दादा ने देखकर भी नहीं देखा। अपने–सा पुराना कोट उतारकर खूँटी पर लटकाया और चारपाई पर लेट गए। दादी–अम्मा देर तक बिना हिले–डुले वैसी–की–वैसी बैठी रही। सीढ़ियों पर छोटे बेटे के पाँवों के उतावली–सी आहट हुई। उमंग की छोटी सी गुनगुनाहट द्वार तक आकर लौट गई। ब्याह के बाद के वे दिन, मीठे मधुर दिन। पाँव बार–बार घर की ओर लौटते हैं। प्यार–सी बहू आँखों में प्यार भर–भरकर देखती है, लजाती है, सकुचाती है और पति की बाँहों में लिपट जाती है। अभी कुछ महीने हुए, यही छोटा बेटा माथे पर फूलों का सेहरा लगाकर ब्याहने गया था। बाजे–गाजे के साथ जब लौटा तो संग में दुलहिन थी।

सबके साथ दादी–अम्मा ने भी पतोहू का माथा चूमकर उसे हाथ का कंगन दिया था। पतोहू ने झुककर दादी–अम्मा के पाँव छुए थे और अम्मा लेन–देन पर मेहराँ से लड़ाई –झगड़े की बात भूलकर कई क्षण दुलहिन के मुखड़े की ओर देखती रही थी। छोटी बेटी ने चंचलता से परिहास कर कहा था, ''दादी–अम्मा, सच कहो भैया की दुलहिन तुम्हें पसंद आई? क्या तुम्हारे दिनों में भी शादी–ब्याह में ऐसे ही कपड़े पहने जाते थे?'' कहकर छोटी बेटी ने दादी के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। हँसी–हँसी में किसी और से उलझ पड़ी।

मेहराँ बहू–बेटे को घेरकर अंदर ले चली। दादी–अम्मा भटकी–भटकी दृष्टि से वे अनगिनत चेहरे देखती रही। कोई पास–पड़ोसिन उसे बधाई दे रही थी, ''बधाई हो अम्मा, सोने–सी बहू आई है। शुक्र है उस मालिक का, तुमने अपने हाथों छोटे पोते का भी काज सँवारा।''

अम्मा ने सिर हिलाया। सचमुच आज उस–जैसा कौन है! पोतों की उसे हौंस थी, आज पूरी हुई। पर काज सँवारने में उसने क्या किया, किसी ने कुछ पूछा नहीं तो करती क्या? समधियों से बातचीत, लेन–देन, दुलहिन के कपड़े–गहने, यह सब मेहराँ के अभ्यस्त हाथों से होता रहा है। घर में पहले दो ब्याह हो जाने पर अम्मा से सलाह–सम्मति करना भी आवश्यक नहीं रह गया। केवल कभी–कभी कोई नया गहना गढ़वाने पर या नया जोड़ा बनवाने पर मेहराँ उसे सास को दिखा देती रही है।

बड़ी बेटी देखकर कहती है, ''माँ! अम्मा को दिखाने जाती हो, वह तो कहेंगी, 'यह गले का गहना हाथ लगाते उड़ता है। कोई भारी ठोस कंठा बनवाओ, सिर की सिंगार–पट्टी बनवाओ। मेरे अपने ब्याह में मायके से पचास तोले का रानीहार चढ़ा था। तुम्हें याद नहीं, तुम्हारे ससुर को कहकर उसी के भारी जड़ाऊ कंगन बनवाए थे तुम्हारे ब्याह में!'' मेहराँ बेटी की ओर लाड़ से देखती है। लड़की झूठ नहीं कहती। बड़े बेटों की सगाई में, ब्याह में, अम्मा बीसियों बार यह दोहरा चुकी हैं। अम्मा को कौन समझाए कि ये पुरानी बातें पुराने दिनों के साथ गईं!

अम्मा नाते–रिश्तों की भीड़ में बैठी–बैठी ऊँघती रही। एकाएक आँख खुली तो नीचे लटकते पल्ले से सिर ढक लिया। एक बेखबरी कि उघाड़े सिर बैठी रही। पर दादी–अम्मा को इस तरह अपने को सँभालते किसी ने देखा तक नहीं। अम्मा की ओर देखने की सुधि भी किसे है? बहू को नया जोड़ा पहनाया जा रहा है। रोशनी में दुलहिन शरमा रही है। ननदें हास–परिहास कर रही हैं। मेहराँ घर में तीसरी बहू को देखकर मन–ही–मन सोच रही है कि बस, अब दोनों बेटियों को ठिकाने लगा दे तो सुर्खरू हो।

बहू का श्रृंगार देख दादी–अम्मा बीच–बीच में कुछ कहती है, ''लड़कियों में यह कैसा चलन है आजकल? बहू के हाथों और पैरों में मेहँदी नहीं रचाई। यही तो पहला सगुन है।''

दादी–अम्मा की इस बात को जैसे किसी ने सुना नहीं।

कृष्णा सोबती

साज–श्रृंगार में चमकती बहू को घेरकर मेहराँ दूल्हे के कमरे की ओर ले चली। नाते–रिश्ते की युवतियाँ मुस्कुरा–मुस्कुराकर शरमाने लगीं, दूल्हे के मित्र–भाई आँखों में नहीं, बाँहों में नए–नए चित्र भरने लगे और मेहराँ बहू पर आशीर्वाद बरसाकर लौटी तो देहरी के संग लगी दादी–अम्मा को देखकर स्नेह जताकर बोली, ''आओ अम्मा, शुक्र है भगवान का, आज ऐसी मीठी घड़ी आई।''

अम्मा सिर हिलाती–हिलाती मेहराँ के साथ हो ली, पर आँखें जैसे वर्षों पीछे घूम गईं। ऐसे ही एक दिन वह मेहराँ को अपने बेटे के पास छोड़ आई थी। वह अंदर जाती थी, बाहर आती थी। वह इस घर की मालकिन थी। पीछे, और पीछे – बाजे–गाजे के साथ उसका अपना डोला इस घर के सामने आ खड़ा हुआ। गहनों की छनकार करती वह नीचे उतरी। घूँघट की ओट से मुस्कुराती, नीचे झुकती और पति की बूढ़ी फूफी से आशीर्वाद पाती।

उस दिन अपनी चारपाई पर लेटकर दादी–अम्मा सोई नहीं। आँखों में न ऊँघ थी, न नींद। एक दिन वह भी दुलहिन बनी थी। बूढ़ी फूफी ने सजाकर उसे भी पति के पास भेजा था। तब क्या उसने यह कोठरी देखी थी? ब्याह के बाद वर्षों तक उसने जैसे यह जाना ही नहीं कि फूफी दिन–भर काम करने के बाद रात को यहाँ सोती है। आँखें मुँद जाने से पहले जब फूफी बीमार हुई तो दादी–अम्मा ने कुलीन बहू की तरह उसकी सेवा करते–करते पहली बार यह जाना था कि घर में इतने कमरे होते हुए भी फूफी इस पिछवाड़े में अपने अन्तिम दिन–बरस काट गई है। पर यह देखकर, जानकर उसे आश्चर्य नहीं हुआ था।

घर के पिछवाड़े में पड़ी फूफी की देह छाँहदार पेड़ के पुराने तने की तरह लगती थी, जिसके पत्तों की छाँह उससे अलग, उससे परे, घर–भर पर फैली हुई थी।

आज तो दादी–अम्मा स्वयं फूफी बनकर इस कोठरी में पड़ी है। ब्याह के कोलाहल से निकलकर जब दादा थककर अपनी चारपाई पर लेटे तो एक लम्बा चैन का–सा साँस लेकर बोले, ''क्या सो गई हो? इस बार की रौनक, लेन–देन तो मँझले और बड़े बेटे के ब्याह को भी पार कर गई। समधियों का बड़ा घर ठहरा!''

दादी–अम्मा लेन–देन की बात पर कुछ कहना चाहते हुए भी नहीं बोली। चुपचाप पड़ी रही। दादा सो गए, आवाजें धीमी हो गईं। बरामदे में मेहराँ का रोबीला स्वर नौकर–चाकरों को सुबह के लिए आज्ञाएँ देकर मौन हो गया। दादी–अम्मा पड़ी रही और पतली नींद से घिरी आँखों से नए–पुराने चित्र देखती रही। एकाएक करवट लेते–लेते दो–चार कदम उठाए और दादा की चारपाई के पास आ खड़ी हुई। झुककर कई क्षण तक दादा की ओर देखती रही। दादा नींद में बेखबर थे और दादी जैसे कोई पुरानी पहचान कर रही हो। खड़े–खड़े कितने पल बीत गए! क्या दादी ने दादा को पहचाना नहीं? चेहरा उसके पति का है पर दादी तो इस चेहरे को नहीं, चेहरे के नीचे पति को देखना चाहती है। उसे बिछुड़ गए वर्षों में से वापस लौटा लेना चाहती है। सिरहाने पर पड़ा दादा का सिर बिल्कुल सफेद था। बन्द आँखों से लगी झुर्रियाँ–ही–झुर्रियाँ थीं। एक सूखी बाँह कम्बल पर सिकुड़ी–सी पड़ी थी। यह नहीं... .यह तो नहीं.... दादी–अम्मा जैसे सोते–सोते जाग पड़ी थी, वैसे ही इस भूले–भटके भँवर में ऊपर–नीचे होती चारपाई पर जा पड़ी।

उस दिन सुबह उठकर जब दादी–अम्मा ने दादा को बाहर जाते देखा तो लगा कि रात–भर की भटकी–भटकी तस्वीरों में से कोई भी तस्वीर उसकी नहीं थी। वह इस सूखी देह और झुके कन्धे में से किसे ढूँढ़ रही थी? दादी–अम्मा चारपाई की बाँहों से उठी और लेट गई। अब तो इतनी–सी दिनचर्या शेष रह गई है। बीच–बीच में कभी उठकर बहुओं के कमरों की ओर जाती है तो लड़–झगड़कर लौट आती हैं। कैसे हैं उसके पोते जो उम्र के रंग में किसी की बात नहीं सोचते? किसी की ओर नहीं देखते? बहू और बेटा, उन्हें भी कहाँ फुरसत है?

मेहराँ तो कुछ–न–कुछ कहकर चोट करने से भी नहीं चूकती। लड़ने को तो दादी भी कम नहीं, पर अब तीखा–तेज बोल लेने पर जैसे वह थककर चूर–चूर हो जाती है। बोलती है, बोले बिना रह नहीं पाती, पर बाद में घंटों बैठी सोचती रहती है कि वह क्यों उनसे माथा लगाती है, जिन्हें उसकी परवा नहीं। मेहराँ की

कृष्णा सोबती

तो अब चाल–ढाल ही बदल गई है। अब वह उसकी बहू नहीं, तीन बहुओं की सास है। ठहरी हुई गंभीरता से घर का शासन चलाती है। दादी–अम्मा का बेटा अब अधिक दौड़–धूप नहीं करता। देखरेख से अधिक अब बहुओं द्वारा ससुर का आदर–मान ही अधिक होता है। कभी अंदर–बाहर जाते अम्मा मिल जाती है तो झुककर बेटा माँ को प्रणाम अवश्य करता है। दादी–अम्मा गर्दन हिलाती–हिलाती आशीर्वाद देती है, ''जीयो बेटा, जीयो।''

कभी मेहराँ की जली–कटी बातें सोच बेटे पर क्रोध और अभिमान करने को मन होता है, पर बेटे को पास देखकर दादी–अम्मा सब भूल जाती है। ममता–भरी पुरानी आँखों से निहारकर बार–बार आशीर्वाद बरसाती चली जाती है, ''सुख पाओ, भगवान बड़ी उम्र दे....'', कितना गंभीर और शीलवान है उसका बेटा! है तो उसका न? पोतों को ही देखो, कभी झुककर दादा के पाँव तक नहीं छूते। आखिर माँ का असर कैसे जाएगा? इन दिनों बहू की बात सोचते ही दादी–अम्मा को लगता है कि अब मेहराँ उसके बेटे में नहीं अपने बेटों में लगी रहती है। दादी–अम्मा को वे दिन भूल जाते हैं जब बेटे के ब्याह के बाद बहू–बेटे के लाड़–चाव में उसे पति के खाने–पीने की सुधि तक न रहती थी और जब लाख–लाख शुक्र करने पर पहली बार मेहराँ की गोद भरनेवाली थी तो दादी–अम्मा ने आकर दादा से कहा था, ''बहू के लिए अब यह कमरा खाली करना होगा। हम लोग फूफी के कमरे में जा रहेंगे।''

दादा ने एक भरपूर नजरों से दादी–अम्मा की ओर देखा था, जैसे वह बीत गए वर्षों को अपनी दृष्टि से टटोलना चाहते हों। फिर सिर पर हाथ फेरते–फेरते कहा था, ''क्या बेटे वाला कमरा बहू के लिए ठीक नहीं? नाहक क्यों यह सबकुछ उलटा–सीधा करवाती हो?'' दादी–अम्मा ने हाथ हिलाकर कहा, ''ओह हो, तुम समझोगे भी! बेटे के कमरे में बहू को रखूँगी तो बेटा कहाँ जाएगा? उलटे–सीधे की फिक्र तुम क्यों करते हो, मैं सब ठीक कर लूँगी।''

और पत्नी के चले जाने पर दादा बहुत देर बैठे–बैठे भारी मन से सोचते रहे कि जिन वर्षों का बीतना उन्होंने आज तक नहीं जाना, उन्हीं पर पत्नी की आशा विराम बनकर आज खड़ी हो गई है। आज सचमुच ही उसे इस उलटफेर की परवा नहीं।

इस कमरे में बड़ी फूफी उनकी दुलहिन को छोड़ गई थी। उस कमरे को छोड़कर आज वह फूफी के कमरे में जा रहे हैं। क्षण–भर के लिए, केवल क्षण–भर के लिए उन्हें बेटे से ईर्ष्या हुई और उदासीनता में बदल गई और पहली रात जब वह फूफी के कमरे में सोए तो देर गए तक भी पत्नी बहू के पास से नहीं लौटी थी। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद उनकी पलकें झँपी तो उन्हें लगा कि उनके पास पत्नी का नहीं...फूफी का हाथ है। दूसरे दिन मेहराँ की गोद भरी थी, बेटा हुआ था। घर की मालकिन पति की बात जानने के लिए बहुत अधिक व्यस्त थी।

कुछ दिन से दादी–अम्मा का जी अच्छा नहीं। दादा देखते हैं, पर बुढ़ापे की बीमारी से कोई दूसरी बीमारी बड़ी नहीं होती। दादी–अम्मा बार–बार करवट बदलती है और फिर कुछ–कुछ देर के लिए हाँफकर पड़ी रह जाती है। दो–एक दिन से वह रसोईघर की ओर भी नहीं आई, जहाँ मेहराँ का आधिपत्य रहते हुए भी वह कुछ–न–कुछ नौकरों को सुनाने में चूकती नहीं है। आज दादी को न देखकर छोटी बेटी हँसकर मँझली भाभी से बोली, ''भाभी, दादी–अम्मा के पास अब शायद कोई लड़ने–झगड़ने की बात नहीं रह गई, नहीं तो अब तक कई बार चक्कर लगातीं।''

दोपहर को नौकर जब अम्मा के यहाँ से अनछुई थाली उठा लाया तो मेहराँ का माथा ठनका। अम्मा के पास जाकर बोली, ''अम्मा, कुछ खा लिया होता, क्या जी अच्छा नहीं?''

एकाएक अम्मा कुछ बोली नहीं। क्षण–भर रुककर आँखें खोली और मेहराँ को देखती रह गई। ''खाने को मन न हो तो अम्मा दूध ही पी लो।''

अम्मा ने 'हाँ'–'ना' कुछ नहीं की। न पलकें ही झपकीं। इस दृष्टि से मेहराँ बहुत वर्षों के बाद आज फिर डरी। इनमें न क्रोध था, न सास की तरेर थी, न मनमुटाव था। एक लम्बा गहरा उलाहना–पहचानते मेहराँ को देर नहीं लगी। डरते–डरते सास के माथे को छुआ। ठंडे पसीने से भीगा था। पास बैठकर धीरे से स्नेह–भरे स्वर में बोली, ''अम्मा, जो कहो, बना लाती हूँ।''

अम्मा ने सिरहाने पर पड़े–पड़े सिर हिलाया – नहीं, कुछ नहीं– और बहू के हाथ से अपना हाथ खींच लिया। मेहराँ पल–भर कुछ सोचती रही और बिना आहट किए बाहर हो गई। बड़ी बहू के पास जाकर चिंतित स्वर में बोली, ''बहू, अम्मा कुछ अधिक बीमार लगती हैं, तुम जाकर पास बैठो तो मैं कुछ बना लाऊँ।'' बहू ने सास की आवाज में आज पहली बार दादी–अम्मा के लिए घबराहट देखी। दबे पाँव जाकर अम्मा के पास बैठ हाथ–पाँव दबाने लगी। अम्मा ने इस बार हाथ नहीं खींचे। ढीली सी लेटी रही। मेहराँ ने रसोईघर में जाकर दूध गर्म किया। औटाने लगी तो एकाएक हाथ अटक गया–क्या अम्मा के लिए यह अन्तिम बार दूध लिये जा रही है? दादी–अम्मा ने बेखबरी में दो–चार घूँट दूध पीकर छोड़ दिया। चारपाई पर पड़ी अम्मा चारपाई के साथ लगी दीखती थीं। कमरे में कुछ अधिक सामान नहीं था। सामने के कोने में दादा का बिछौना बिछा था। शाम को दादा आए तो अम्मा के पास बहू और पतोहू को बैठे देख पूछा, ''अम्मा तुम्हारी रूठकर लेटी है या....?''

मेहराँ ने अम्मा की बाँह आगे कर दी। दादा ने छूकर हौले से कहा, ''जाओ बहू, बेटा आता ही होगा। उसे डॉक्टर को लिवाने भेज देना।'' मेहराँ सुसर के शब्दों को गंभीरता जानते हुए चुपचाप बाहर हो गई। बेटे के साथ जब डॉक्टर आया तो दादी–अम्मा के तीनों पोते भी वापस आ खड़े हुए। डॉक्टर ने सधे–सधाए हाथों से दादी की परीक्षा की। जाते–जाते दादी के बेटे

कृष्णा सोबती

से कहा, ''कुछ ही घंटे और...।''

मेहराँ ने बहुओं को धीमे स्वर में आज्ञाएँ दीं और बेटों से बोली, ''बारी–बारी से खा–पी लो, फिर पिता और दादा को भेज देना।'' अम्मा के पास से हटने की पिता और दादा की बारी नहीं आई उस रात। दादी ने बहुत जल्दी की। डूबते–डूबते हाथ–पाँवों से छटपटाकर एक बार आँखें खोलीं और बेटे और पति के आगे बाँहे फैला दीं। जैसे कहती हो–'मुझे तुम पकड़ रखो।'

दादी का श्वास उखड़ा, दादा का कंठ जकड़ा और बेटे ने माँ पर झुककर पुकारा, ''अम्मा,...अम्मा।''

''सुन रही हूँ बेटा, तुम्हारी आवाज पहचानती हूँ।''

मेहराँ सास की ओर बढ़ी और ठंडे हो रहे पैरों को छूकर याचना–भरी दृष्टि से दादी–अम्मा को बिछुरती आँखों से देखने लगी। बहू को रोते देख अम्मा की आँखों में क्षण–भर को संतोष झलका, फिर वर्षों की लड़ाई–झगड़े का आभास उभरा। द्वार से लगी तीनों पोतों की बहुएँ खड़ी थीं। मेहराँ ने हाथ से संकेत किया। बारी–बारी दादी–अम्मा के निकट तीनों झुकीं। अम्मा की पुतलियों में जीवन–भर का मोह उतर गया। मेहराँ से उलझा कड़वापन ढीला हो गया। चाहा कि कुछ कहे....कुछ.... पर छूटते तन से दादी–अम्मा ओंठों पर कोई शब्द नहीं खींच पाई।

''अम्मा, बहुओं को आशीष देती जाओ....,'' मेहराँ के गीले कंठ में आग्रह था, विनय थी।

अम्मा ने आँखों के झिलमिलाते पर्दे में से अपने पूरे परिवार की ओर देखा–बेटा....बहू....पति.... पोते–पतोहू...पोतियाँ। छोटी पतोहू की गुलाबी ओढ़नी जैसे दादी के तन–मन पर बिखर गई। उस ओढ़नी से लगे गोर–गोरे लाल–लाल बच्चे, हँसते–खेलते, भोली किलकारियाँ...। दादी–अम्मा की धुँधली आँखों में से और सब मिट गया, सब पुँछ गया, केवल ढेर–से अगणित बच्चे खेलते रह गए...! उसके पोते, उसके बच्चे....। पिता और पुत्र ने एक साथ देखा, अम्मा जैसे हल्के से हँसी, हल्के से.. ..।

मेहराँ को लगा, अम्मा बिल्कुल वैसे हँस रही है जैसे पहली बार बड़े बेटे के जन्म पर वह उसे देखकर हँसी थी। समझ गई–बहुओं को आशीर्वाद मिल गया। दादा ने अपने सिकुड़े हाथ में दादी का हाथ लेकर आँखों से लगाया और बच्चों की तरह बिलख–बिलखकर रो पड़े।

रात बीत जाने से पहले दादी–अम्मा बीत गई। अपने भरे–पूरे परिवार के बीच वह अपने पति, बेटे और पोतों के हाथों में अंतिम बार घर से उठ गई। दाह–संस्कार हुआ और दादी–अम्मा की पुरानी देह फूल हो गई। देखने–सुननेवाले बोले, ''भाग्य हो तो ऐसा, फलता–फूलता परिवार।''

मेहराँ ने उदास–उदास मन से सबके लिए नहाने का सामान जुटाया। घर–बाहर धुलाया। नाते–रिश्तेदार पास–पड़ोसी अब तक लौट गए थे। मौत के बाद रूखी सहमी–सी दुपहर। अनचाहे मन से कुछ खा–पीकर घरवाले चुपचाप खाली हो बैठे। अम्मा चली गई, पर परिवार भरा–पूरा है। पोते थककर अपने–अपने कमरों मे जा लेटे। बहुएँ उठने से पहले सास की आज्ञा पाने को बैठी रहीं। दादी–अम्मा का बेटा निढाल होकर कमरे में जा लेटा। अम्मा की खाली कोठरी का ध्यान आते ही मन बह आया। कल तक अम्मा थी तो सही उस कोठी में। रुआँसी आँखें बरसकर झुक आईं तो सपने में देखा, नदी–किनारे घाट पर अम्मा खड़ी हैं अपनी चिता को जलते देख कहती है, 'जाओ बेटा, दिन ढलने को आया, अब घर लौट चलो, बहू राह देख रही होगी। जरा सँभलकर जाना। बहू से कहना, बेटियों को अच्छे ठिकाने लगाए।''

दृश्य बदला। अम्मा द्वार पर खड़ी है। झाँककर उसकी ओर देखती है, ''बेटा, अच्छी तरह कपड़ा ओढ़कर सोओ। हाँ बेटा, उठो तो! कोठरी में बापू को मिल आओ, यह विछोह उनसे न झेला जाएगा। बेटा, बापू को देखते रहना। तुम्हारे बापू ने मेरा हाथ पकड़ा था, उसे अंत तक निभाया, पर मैं ही छोड़ चली।''

बेटे ने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं। कई क्षण द्वार की ओर देखते रह गए। अब कहाँ आएगी अम्मा इस देहरी पर...।

बिना आहट किए मेहराँ आई। रोशनी की। चेहरे पर अम्मा की याद नहीं, अम्मा का दुख था। पति को देखकर जरा सी रोई और बोली, ''जाकर ससुरजी को तो देखो। पानी तक मुँह नहीं लगाया।'' पति खिड़की में से कहीं दूर देखते रहे। जैसे देखने के साथ कुछ सुन रहे हों– ''बेटा, बापू को देखते रहना, तुम्हारे बापू ने तो अंत तक संग निभाया, पर मैं ही छोड़ चली।''

''उठो।'' मेहराँ कपड़ा खींचकर पति के पीछे हो ली। अम्मा की कोठरी में अँधेरा था। बापू उसी कोठरी के कोने में अपनी चारपाई पर बैठे थे। नजर दादी–अम्मा की चारपाईवाली खाली जगह पर गड़ी थी। बेटे को आया जान हिले नहीं।

''बापू, उठो, चलकर बच्चों में बैठो, जी सँभलेगा।''

बापू ने सिर हिला दिया।

मेहराँ और बेटे की बात बापू को मानो सुनाई नहीं दी। पत्थर की तरह बिना हिले–डुले बैठे रहे। बहू–बेटा, बेटे की माँ.....खाली दीवारों पर अम्मा की तस्वीरें ऊपर–नीचे होती रहीं। द्वार पर अम्मा घूँघट निकाले खड़ी है। बापू को अंदर आते देख शरमाती है और

कृष्णा सोबती

बुआ की ओट हो जाती है। बुआ स्नेह से हँसती है। पीठ पर हाथ फेरकर कहती है, ''बहू, मेरे बेटे से कब तक शरमाओगी।?''

अम्मा बेटे को गोद में लिये दूध पिला रही हैं बापू घूम–फिरकर पास आ खड़े होते हैं। तेवर चढ़े। तीखे बालों को फीका बनाकर कहते हैं, 'मेरी देखरेख अब सब भूल गई हो। मेरे कपड़े कहाँ डाल दिए?' अम्मा बेटे के सिर को सहलाते–सहलाते मुस्कुराती है। फिर बापू की आँखों में भरपूर देखकर कहती है, ''अपने ही बेटे से प्यार का बँटवारा कर झुँझलाने लगे!''

बापू इस बार झुँझलाते नहीं, झिझकते हैं, फिर एकाएक दूध पीते बेटे को अम्मा से लेकर चूम लेते हैं। मुन्ने के पतले नर्म ओठों पर दूध की बूँद अब भी चमक रही है। बापू अँधेरे में अपनी आँखों पर हाथ फेरते हैं। हाथ गीले हो जाते हैं। उनके बेटे की माँ आज नहीं रही।

तीनों बेटे दबे–पाँवों जाकर दादा को झाँक आए। बहुएँ सास की आज्ञा पा अपने–अपने कमरों में जा लेटीं। बेटियों को सोता जान मेहराँ पति के पास आई तो सिर दबाते–दबाते प्यार से बोली, ''अब हौसला करो''... लेकिन एकाएक किसी की गहरी सिसकी सुन चौंक पड़ी। पति पर झुककर बोली, ''बापू की आवाज लगती है, देखो तो।''

बेटे ने जाकर बाहरवाला द्वार खोला, पीपल से लगी झुकी–सी छाया। बेटे ने कहना चाहा, 'बापू'! पर बैठे गले से आवाज निकली नहीं। हवा में पत्ते खड़खड़ाए, टहनियाँ हिलीं और बापू खड़े–खड़े सिसकते रहे।

''बापू!''

इस बार बापू के कानों में बड़े पोते की आवाज आई। सिर ऊँचा किया, तो तीनों बेटों के साथ देहरी पर झुकी मेहराँ दीख पड़ी। आँसुओं के गीले पूर में से धुंध बह गई। मेहराँ अब घर की बहू नहीं, घर की अम्मा लगती है। बड़े बेटे का हाथ पकड़कर बापू के निकट आई। झुककर गहरे स्नेह से बोली, ''बापू, अपने इन बेटों की ओर देखो, यह सब अम्मा का ही तो प्रताप है। महीने–भर के बाद बड़ी बहू की झोली भरेगी, अम्मा का परिवार और फूले–फलेगा।''

बापू ने इस बार सिसकी नहीं भरी। आँसुओं को खुले बह जाने दिया। पेड़ के कड़े तने से हाथ उठाते–उठाते सोचा–दूर तक धरती में बैठी अगणित जड़ें अंदर–ही–अंदर इस बड़े पुराने पीपल को थामे हुए हैं। दादी–अम्मा इसे नित्य पानी दिया करती थी। आज वह भी धरती में समा गई है। उसके तन से ही तो बेटे–पोते का यह परिवार फैला है। पीपल की घनी छाँह की तरह यह और फैलेगा। बहू सच कहती है। यह सब अम्मा का ही प्रताप है। वह मरी नहीं।

वह तो अपनी देह पर के कपड़े बदल गई है, अब वह बहू में जीएगी, फिर बहू की बहू में...।

ऐप एक काम अनेक
पटना शहर को साफ स्वच्छ बनाने के लिए
'क्लीन पटना ऐप' डाऊनलोड करें
GET IT ON Google Play
Clean Patna App
डाऊनलोड करे
CITIZEN GRIEVANCE APP
अपनी शिकायत का स्टेटस जानें
शिकायत दर्ज करें
गाड़ी को ट्रैक करें
बिल देखें
हेल्पलाइन नंबर
155304
स्वच्छ पटना
शहर अपना
कुछ हम करें, कुछ आप करें
पटना नगरपालिका
CITY OF PATNA
पटना नगर निगम द्वारा जनहित में जारी

अपने शहर को रखें साफ
पटना नगरपालिका
CITY OF PATNA
हेल्पलाइन नंबर 155304
पटना नगर निगम द्वारा जनहित में जारी
SWACHH SURVEKSHAN 2022
कुछ हम करें, कुछ आप करें
स्वच्छ पटना
शहर अपना

निर्मला पुतुल

निर्मला पुतुल का जन्म झारखंड राज्य के दुमका जिले के 'दूधनी कुरूवा' गाँव में एक संथाल आदिवासी परिवार में हुआ। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी जीवन के बहू आयामों को देखा जा सकता है। साथ ही स्त्रियों की पीड़ा, वेदना, उपेक्षा, विवशता को भी उजागर किया है। उनकी कविताओं के माध्यम से स्त्री अपने दर्द को अभिव्यक्त करने के साथ पुरूष व्यवस्था का भी विरोध करती है। निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में स्त्रियों के प्रति किए जाने वाले शोषण को भी उजागर करती है। इन स्त्रियों में आदिवासी स्त्रियों का भी समावेश है जिनका शोषण किया जाता है। एक स्त्री को अपना जीवन पिता, पति, और पुत्र के सहारे ही जीना पड़ता है। इस पुरूष प्रधान समाज में वह अपने अस्तित्व के साथ अपना स्थान भी तलाशती है। स्त्री को एक ही समय में स्थापित और निर्वासित होना पड़ता है। बचपन से लाड़-दुलार से उसे बड़ा करके विवाह के उपरांत पति के अनजान घर भेज दिया जाता है।

निर्मला पुतुल

बाबा! मुझे उतनी दूर मत ब्याहना

बाबा!
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें

मत ब्याहना उस देश में
जहाँ आदमी से ज्यादा
ईश्वर बसते हों

जंगल नदी पहाड़ नहीं हों जहाँ
वहाँ मत कर आना मेरा लगन

वहाँ तो कतई नहीं
जहाँ की सड़कों पर
मन से भी ज्यादा तेज दौड़ती हों मोटर–गाड़ियाँ
ऊँचे–ऊँचे मकान
और दुकानें हों बड़ी–बड़ी

उस घर से मत जोड़ना मेरा रिश्ता

उस घर से मत जोड़ना मेरा रिश्ता
जिस घर में बड़ा–सा खुला आँगन न हो
मुर्गे की बाँग पर जहाँ होती ना हो सुबह
और शाम पिछवाड़े से जहाँ
पहाडी पर डूबता सूरज ना दिखे।

मत चुनना ऐसा वर
जो पोचाई, और हंडिया में
डूबा रहता हो अक्सर

काहिल निकम्मा हो
माहिर हो मेले से लड़कियाँ उड़ा ले जाने में
ऐसा वर मत चुनना मेरी खातिर

जो बात–बात में बात करे लाठी–डंडे की

कोई थारी लोटा तो नहीं
कि बाद में जब चाहूँगी बदल लूँगी
अच्छा–खराब होने पर
जो बात–बात में
बात करे लाठी–डंडे की
निकाले तीर–धनुष कुल्हाडी
जब चाहे चला जाए बंगाल, आसाम, कश्मीर
ऐसा वर नहीं चाहिए मुझे

और उसके हाथ में मत देना मेरा हाथ
जिसके हाथों ने कभी कोई पेड़ नहीं लगाया
फसलें नहीं उगाई जिन हाथों ने
जिन हाथों ने नहीं दिया कभी किसी का साथ
किसी का बोझ नहीं उठाया

और तो और
जो हाथ लिखना नहीं जानता हो 'ह' से हाथ
उसके हाथ में मत देना कभी मेरा हाथ

महुआ का लट और खजूर का गुड़

ब्याहना तो वहाँ ब्याहना
जहाँ सुबह जाकर
शाम को लौट सको पैदल

मैं कभी दुःख में रोऊँ इस घाट
तो उस घाट नदी में स्नान करते तुम
सुनकर आ सको मेरा करुण विलाप.....

महुआ का लट और
खजूर का गुड़ बनाकर भेज सकूँ सन्देश
तुम्हारी खातिर
उधर से आते–जाते किसी के हाथ
भेज सकूँ कद्दू–कोहड़ा, खेखसा, बरबट्टी,
समय–समय पर गोगो के लिए भी

निर्मला पुतुल

मेला हाट जाते–जाते

मेला हाट जाते–जाते
मिल सके कोई अपना जो
बता सके घर–गाँव का हाल–चाल
चितकबरी गैया के ब्याने की खबर
दे सके जो कोई उधर से गुजरते
ऐसी जगह में ब्याहना मुझे

उस देश ब्याहना
जहाँ ईश्वर कम आदमी ज्यादा रहते हों
बकरी और शेर
एक घाट पर पानी पीते हों जहाँ
वहीं ब्याहना मुझे!

उसी के संग ब्याहना जो
कबूतर के जोड़ और पंडुक, पक्षी की तरह
रहे हरदम साथ
घर–बाहर खेतों में काम करने से लेकर
रात सुख–दुःख बाँटने तक

चुनना वर ऐसा

चुनना वर ऐसा
जो बजाता हों बाँसुरी सुरीली
और ढोल–मांदर बजाने में हो पारंगत

बसंत के दिनों में ला सके जो रोज
मेरे जूड़े की खातिर पलाश के फूल

जिससे खाया नहीं जाए
मेरे भूखे रहने पर
उसी से ब्याहना मुझे।

महादेवी वर्मा

हिंदी साहित्य में छायावादी काल के प्रमुख चार स्तंभों में से एक महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च 1907 को उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद में हुआ था। उनका निधन 11 सितम्बर 1987 को प्रयागराज में हुआ। महादेवी वर्मा ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा मिशन स्कूल इंदौर से प्राप्त की और उन्होंने चित्रकला, संस्कृत, अंग्रेजी की पढ़ाई घर पर रहकर की। विवाह के कारण महादेवी वर्मा की शिक्षा में थोड़ी रूकावट आई, लेकिन विवाह के बाद उन्होंने क्रास्थवेट कॉलेज, प्रयागराज में दाखिला लिया और हॉस्टल में ही रहने लगीं। उन्होंने 1921 में आठवीं बोर्ड व 1925 में 12वीं कक्षा पास की। 1932 में उन्होंने प्रयागराज विश्वविद्यालय से स्नात्कोत्तर किया और इनके दो कविता संग्रह रश्मि और विहार इस उम्र तक प्रकाशित हो चुके थे। विद्यालय में इनकी मित्र सुभद्रा कुमारी चौहान ने उन्हें बहुत प्रभावित किया और आगे बढ़ने में इनका बहन की तरह साथ दिया। अपनी कालजयी रचनाओं के लिए महादेवी वर्मा को अनगिनत पुरस्कारों से नवाजा गया। 1956 में भारत सरकार ने साहित्य की सेवा के लिए उन्हें पद्म भूषण प्रदान किया। महादेवी वर्मा को मरणोपरांत 1988 में पद्म विभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यामा के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार भी दिया गया।

महादेवी वर्मा

बिबिया

अपने जीवनवृत्त के विषय में बिबिया की माई ने कभी कुछ बताया नहीं, किन्तु उसके मुख पर अंकित विवशता की भंगिमा, हाथों पर चोटों के निशान, पैर का अस्वाभाविक लंगड़ापन देखकर अनुमान होता था कि उसका जीवन–पथ सुगम नहीं रहा।

मद्यप और झगड़ालू पति के अत्याचार भी सम्भवतः उसके लिए इतने आवश्यक हो गए थे कि उनके अभाव में उसे इस लोक में रहना पसन्द न आया। माँ–बाप के न रहने पर बालिका की स्थिति कुछ अनिश्चित–सी हो गई। घर पर बड़ा भाई कन्हई, भौजाई और दादी थी। दादी बूढ़ी होने के कारण पोती की किसी भी त्रुटि को कभी अक्षम्य मानती थी, कभी नगण्य। ननद–भौजाई के संबंध में परम्परागत वैमनस्य था और बीच के कई भाई–बहिन के मर जाने के कारण सबसे बड़े भाई और सबसे छोटी बहिन में अवस्था का इतना अन्तर था कि वे एक–दूसरे के साथी नहीं हो सकते थे।

सम्भवतः सहानुभूति के दो–चार शब्दों के लिए ही बिबिया जब–तब मेरे पास आ पहुँचती थी। उसकी माँ मुझे दिदिया कहती थी। बेटी मौसीजी कहकर उसी संबंध का निर्वाह करने लगी। साधारणतः धोबियों का रंग साँवला पर मुख का गठन सुडौल होता है। बिबिया ने गेहुएँ रंग के साथ यह विशेषता पाई थी। उस पर उसका हँसमुख स्वभाव उसे विशेष आकर्षण दे देता था। छोटे–छोटे सफेद दाँतों की बत्तीसी निकली ही रहती थी। बड़ी आँखों की पुतलियाँ मानो संसार का कोना–कोना देख आने के लिए चंचल रहती थीं। सुडौल गठीले शरीर वाली बिबिया को धोबिन समझना कठिन था– पर थी वह धोबिनों में भी सबसे अभागी धोबिन।

ऐसी आकृति के साथ जिस आलस्य या सुकुमारता की कल्पना की जाती है, उसका बिबिया में सर्वथा अभाव था। वस्तुतः उसके समान परिश्रमी खोजना कठिन होगा। अपना ही नहीं, वह दूसरों का काम करके भी आनन्द का अनुभव करती थी। दादी की मुट्ठी से झाड़ू खींच कर वह घर–आँगन बुहार आती, भौजाई के हाथ से लोई छीनकर वह रोटी बनाने बैठ जाती और भाई की उंगलियों से भारी स्त्री छुड़ा कर वह स्वयं कपड़ों की तह पर स्त्री करने लगती। कपड़ों में सज्जी लगाना, भट्ठी चढ़ाना, लादी ले जाना, कपड़े धोना–सुखाना आदि कामों में वह सब से आगे रहती। केवल उसके स्वभाव में अभिमान की मात्रा इतनी थी कि वह दोष की सीमा तक पहुँच जाती थी। अच्छे कपड़े पहनना उसे अच्छा लगता था और यह शौक ग्राहकों के कपड़ों से पूरा हो जाता था। गहने भी उसकी माँ ने कम नहीं छोड़े थे। विवाह–संबंध उसके जन्म से पहले ही निश्चित हो गया था। पाँचवे वर्ष में ब्याह भी हो गया, पर गौने से पहले ही वर की मृत्यु ने उस सम्बन्ध को तोड़

कर, जोड़ने वालों का प्रयत्न निष्फल कर दिया। ऐसी परिस्थिति में, जिस प्रकार उच्च वर्ग की स्त्री का गृहस्थी बसा लेना कलंक है, उसी प्रकार नीच वर्ग की स्त्री का अकेला रहना सामाजिक अपराध है।

कन्हई यमुना–पार देहात में रहता था, पर बहन के लिए उसने, इस पार शहर का धोबी ढूँढ़ा। एक शुभ दिन पुराने वर का स्थानापन्न अपने संबंधियों को लेकर भावी ससुराल पहुँचा। एक बड़े डेग में मांस बना और बड़े कड़ाह में पूरियाँ छनीं। कई बोतलें ठर्रा शराब आई और तब तक नाच–रंग होता रहा, जब तक बराती–घराती सब औंधे मुँह न लुढ़क पड़े। नई ससुराल पहुँच जाने के बाद कई महीने तक बिबिया नहीं दिखाई दी। मैंने समझा कि नई गृहस्थी बसाने में व्यस्त होगी। कुछ महीने बाद अचानक एक

महादेवी वर्मा

दिन मैले–कुचैले कपड़े पहने हुए बिबिया आ खड़ी हुई। उसके मुख पर झांई आ गई थी और शरीर दुर्बल जान पड़ता था, पर न आँखों में विषाद के आँसू थे, न ओठों पर सुख की हँसी। न उसकी भाव–भंगिमा में अपराध की स्वीकृति थी और न निरपराधी की न्याय–याचना। एक निर्विकार उपेक्षा ही उसके अंग–अंग से प्रकट हो रही थी।

जो कुछ उसने कहा उसका आशय था कि वह मेरे कपड़े धोयेगी और भाई के ओसारे में अलग रोटी बना लिया करेगी। धीरे–धीरे पता चला कि उसके घर वाले ने उसे निकाल दिया है। कहता है, ऐसी औरत के लिए मेरे घर में जगह नहीं चाहे भाई के यहाँ पड़ी रहे, चाहे दूसरा घर कर ले। चरित्र के लिए बिबिया को यह निर्वासन मिला होगा, यह सन्देह स्वाभाविक था, पर मेरा प्रश्न उसकी उदासीनता के कवच को भेदकर मर्म में इस तरह चुभ गया कि वह फफककर रो उठी "अब आपहु अस सोचे लागीं मौसीजी! मइया तो सरगै गई, अब हमार नइया कसत पार लगी!"

उसका विषाद देख कर ग्लानि हुई, पर उसकी दादी से सब इतिवृत्त जानकर मुझे अपने ऊपर क्रोध हो आया। रमई के घर जाकर बिबिया ने गृहस्थी की व्यवस्था के लिए कम प्रयत्न नहीं किया, पर वह था पक्का जुआरी और शराबी। यह अवगुण तो सभी धोबियों में मिलते हैं, पर सीमातीत न होने पर उन्हें स्वाभाविक मान लिया जाता है।

रमई पहले ही दिन बहुत रात गए नशे में धुत घर लौटा। घर में दूसरी स्त्री न होने के कारण नवागत बिबिया को ही रोटी बनानी पड़ी। वह विशेष यत्न से दाल, तरकारी बनाकर रोटी सेंकने के लिए आटा साने उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। रमई लड़खड़ाता हुआ घुसा और उसे देख ऐसी घृणास्पद बातें बकने लगा कि वह धीरज खो बैठी। एक तो उसके मिजाज में वैसे ही तेजी अधिक थी, दूसरे यह तो अपने घर अपने पति से मिला अपमान था। बस वह जलकर कह उठी ''चुल्लू भर पानी माँ डूब मरी। ब्याहता मेहरारू से अस बतियात हौ जानौ बसवा के आये होयँ छी–छी।''

नशे में बेसुध होने पर भी पति ने अपने आपको अपमा. नित अनुभव किया दाँत निपोर और आँखें चढ़ाकर उसने अवज्ञा से कहा ''ब्याहता! एक तो भच्छ लिहिन अब दूसर के घर आई हैं, सत्ती छीता बनै खातिर धन भाग परनाम पाँलागी।''

क्रोध न रोक सकने के कारण बिबिया ने चिमटा उठा कर उस पर फेंक दिया। बचने के प्रयास में वह लटपटाकर औंधे मुँह गिर पड़ा और पत्नी ने भीतर की अँधेरी कोठरी में घुसकर द्वार बन्द कर लिया। सबेरे जब वह बाहर निकली, तब घर वाला बाहर जा चुका था। फिर यह क्रम प्रतिदिन चलने लगा। शराब के अति. रिक्त उसे जुए का भी शौक था, जो शराब की लत से भी बुरा है। शराबी होश में आने पर मनुष्य बन जाता है, पर जुआरी कभी होश में आता ही नहीं, अतः उसके संबंध में मनुष्य बनने का प्रश्न उठता ही नहीं।

रमई के जुए के साथी अनेक वर्गों से आये थे। कोई काछी था, तो कोई मोचीय कोई जुलाहा था, तो कोई तेली। हार–जीत की वस्तुएँ भी विचित्र होती थीं। कपड़ा, जूता, रुपया–पैसा, बर्तन आदि में से जो हाथ में आया, वही दाँव पर रख दिया जाता था। कोई किसी की घरवाली की हँसुली जीत लेता और कोई किसी की पतोहू के झुमके। कोई अपनी बहन की पहुँची हार जाता था और कोई नातिन के कड़े। सारांश यह कि जुए के पहले चोरी–डकैती की आवश्यकता भी पड़ जाती थी।

एक बार रमई के जुए के साथी मियाँ करीम ने गुलाबी आँखें तरेर कर कहा ''अरे दोस्त, तुम तो अच्छी छोकरी हथिया लाये हो। उसी को दाँव पर क्यों नहीं रखते? किस्मतवर होंगे, तो तुम्हारे सामने रुपये–पैसे का ढेर लग जायेगा, ढेर!'' इस प्रस्ताव का सबने मुक्तकण्ठ से समर्थन किया। रमई बिबिया को रखने के लिए प्रस्तुत भी हो गया, पर न जाने उसे चिमटा स्मरण हो आया या लुआठी कि वह रुक गया। बहाना बनाया आज तो रुपया गाँठ में है, न होगा तो मेहरारू और किस दिन के लिए होती है।

बिबिया तक यह समाचार पहुँचते देर न लगी। उस जैसी अभिमानिनी स्त्री के लिए यह समचार पलीते में आग के समान हो गया। दुर्भाग्य से उसने एक दिन करीम मियाँ को अपने द्वार पर देख लिया। बस फिर क्या था भीतर से तरकारी काटने का बड़ा चाकू निकालकर और भौंहें टेढ़ी कर उसने उन्हें बता दिया कि रमई के ऐसी हरकत करने पर वह उन दोनों के पेट में यही चाकू भोंक देगी। फिर चाहे उसे कितना ही कठोर दण्ड क्यों न मिले, पर वह ऐसा करेगी अवश्य। वह ऐसी गाय–बछिया नहीं है, जिसे चाहे कसाई के हाथ बेच दिया जावे, चाहे वैतरणी पार उतरने के लिए महाब्राह्मण को दान कर दिया जावे।

करीम मियाँ तो सन्न रह गए, पर दूसरे दिन जुए के साथियों के सामने उन्होंने रमई से कहा ''लाहौल बिला कूबत, शरीफ आदमी के घर ऐसी औरत! मुई बिलोचिन की तरह बात–बात पर छूरा–चाकू दिखाती है। किसी दिन वह तुम पर भी वार करेगी बच्चू! सँभले रहना। घर में कजा को बैठाकर चौन की नींद ले रहे हो!''

लखना अहीर सिर हिला–हिलाकर गम्भीर भाव से बोला ''मेहररुअन अब मनसेधुअन का मारै बरे घूमती हैं, राम राम। अब जानौ कलजुग परगट दिखाय लागा!'' महँगू काछी शास्त्राज्ञान का परिचय देने लगा ''ऊ देखौ छीता रानी कस रहीं। उइ निकार दिहिन तऊ न बोलीं। बिचारिउ बेटवन का लै के झारखंड माँ परी रहीं।'' खिलावन तेली ने समर्थन किया ''उहै तो सत्ती सतवन्ती कही गई हैं! उनके बरे तो धरती माता फाटि जाती रहीं। ई सब का खाय कै सत्ती हुई हैं!''

रमई बेचारा कुछ बोल ही न सका। उसकी पत्नी की गणना सतियों में नहीं हो सकती, यह क्या कुछ कम लज्जा की बात थी। इस लज्जा और ग्लानि का भार वह उठा भी लेता, पर

महादेवी वर्मा

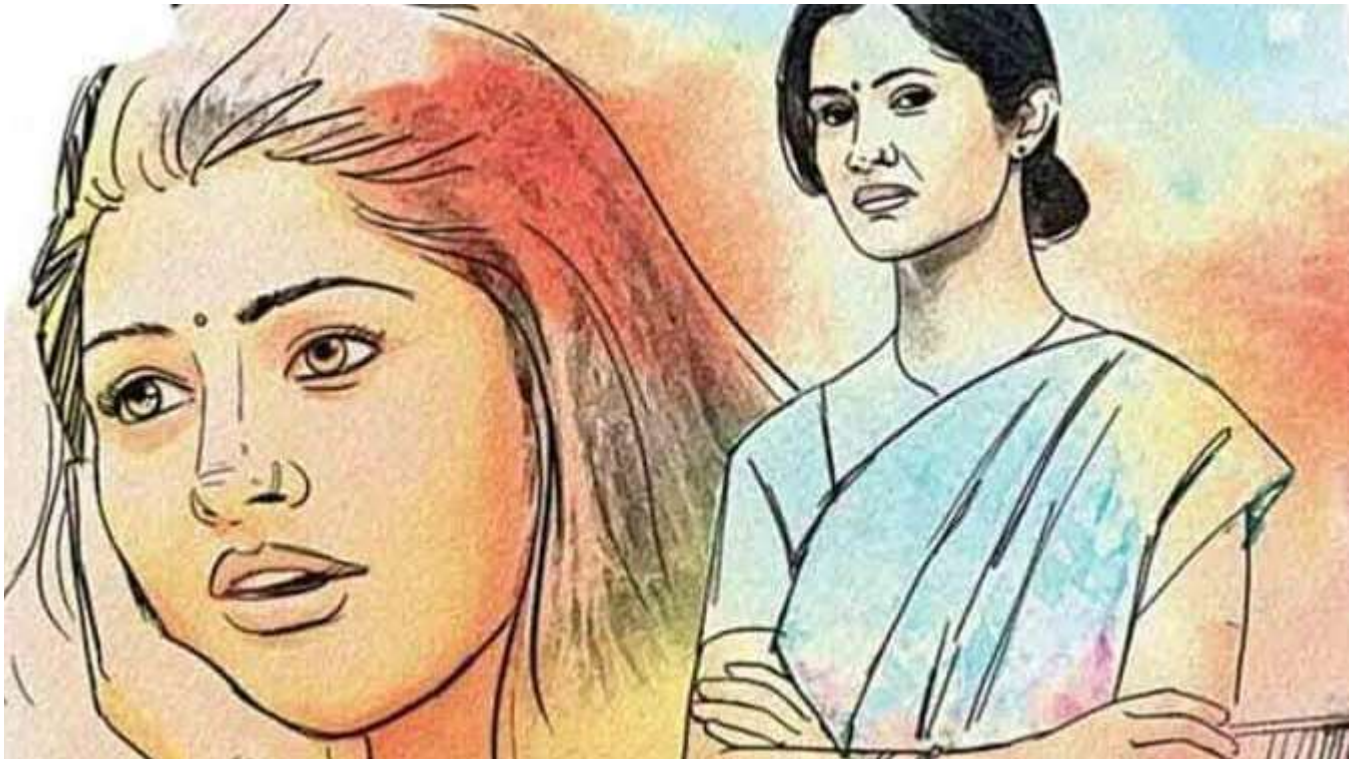

रात–दिन भय की छाया में रहना तो दुर्वह था। जो स्त्री चाकू निकालते हुए नहीं डरती, वह क्या उसके उपयोग में डरेगी। रमई बेचारा सचमुच इतना डर गया कि पत्नी की छाया से बचने लगा। इसी प्रकार कुछ दिन बीते, पर अन्त में रमई ने साफ–साफ कह दिया कि वह बिबिया को घर में नहीं रखेगा। पंच–परमेश्वर भी उसी के पक्ष में हो गए। क्योंकि वे सभी रमई के समानधर्मी थे। यदि उनके घर में ऐसी विकट स्त्री होती, जिसके सामने वे न शराब पीकर जा सकते थे, न जुआ खेलकर, तो उन्हें भी यही करना पड़ता।

निरुपाय बिबिया घर लौट आई और सदा के समान रहने लगी। भौजाई के व्यंग्य उसे चुभते नहीं थे, यह कहना मिथ्या होगा, पर दादी के आँचल में आँसू पोंछने भर के लिए स्थान था। वह पहले से चौगुना काम करती। सबसे पहले उठती और सबके सो जाने पर सोती। न अच्छे कपड़े पहनती, न गहने। न गाती–बजाती, न किसी नाच–रंग में शामिल होती। पति के अपमान ने उसे मर्माहत कर दिया था, पर जात–बिरादरी में फैली बदनामी उसका जीना ही मुश्किल किये दे रही थी। ऐसी सुन्दर और मेहनती स्त्री को छोड़ना सहज नहीं है, इसी से सबने अनुमान लगा लिया कि उसमें गुणों से भारी कोई दोष होगा। कन्हई ने एक बार फिर उसका घर बसा देने का प्रयत्न किया।

इस बार उसने निकटवर्ती गाँव में रहने वाले एक विधुर अधेड़ और पाँच बच्चों के बाप को बहनोई–पद के लिए चुना। पर बिबिया ने बड़ा कोलाहल मचाया। कई दिन अनशन किया। कई घंटे रोती रही। 'दादा अब हम न जाब। चाहे मूड़ फोरि कै मर जाब, मुदा माई–बाबा कर देहरिया न छाँड़ब' आदि–आदि कहकर उसने कन्हई को निश्चय से विचलित करना चाहाय पर उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो गए। भाई के विचार में युवती बहिन को घर में रखना, आपत्ति मोल लेना था। कहीं उसका पैर ऊँचे–नीचे पड़ गया, तो भाई का हुक्का–पानी बन्द हो जाना स्वाभाविक था। उसके पास इतना रुपया भी नहीं कि जिससे पंचदेवताओं की पेट–पूजा करके जात–बिरादरी में मिल सके।

अन्त में बिबिया की स्वीकृति उदासीनता के रूप में प्रकट हुई। किसी ने उसे गुलाबी धोती पहना दी, किसी ने आँखों में काजल की रेखा खींच दी और किसी ने परलोकवासिनी सपत्नी के कड़े–पछेली से हाथ–पाँव सजा दिये। इस प्रकार बिबिया ने फिर ससुराल की ओर प्रस्थान किया। जब एक वर्ष तक मुझे उसका कोई समाचार न मिला, तब मैंने आश्वस्त होकर सोचा कि वह जंगली लड़की अब पालतू हो गई।

मैं ही नहीं, उसके भाई, भौजाई, दादी आदि सम्बन्धी भी जब कुछ निश्चिंत हो चुके, तब एक दिन अचानक सुना कि वह फिर नैहर लौट आई है। इतना ही नहीं, इस बार उसके कलंक की कालिमा और अधिक गहरी हो गई थी, पर मेरे पास वह कुछ कहने–सुनने नहीं आई। पता चला, वह न घर का ही कोई काम करती थी और न बाहर ही निकलती। घर की उसी अँधेरी कोठरी में, जिसके एक कोने में गधे के लिए घास भरी थी और दूसरे में ईंधन–कोयले का ढेर लगा था, वह मुँह लपेटे पड़ी रहती थी। बहुत

महादेवी वर्मा

कहने–सुनने पर दो कौर खा लेती, नहीं तो उसे खाने–पीने की भी चिन्ता नहीं रहती। यह सब सुनकर चिंतित होना स्वाभाविक ही कहा जायेगा। मन के किसी अज्ञान कोने से बार–बार सन्देह का एक छोटा–सा मेघ–खण्ड उठता था। और धीरे– धीरे बढ़ते–बढ़ते विश्वास की सब रेखाओं पर फैल जाता था। बिबिया क्या वास्तव में चरित्रहीन है? यदि नहीं, तो वह किसी घर में आदर का स्थान क्यों नहीं बना पाती? उससे रूप–गुण में बहुत तुच्छ लड़कियाँ भी अपना–अपना संसार बसाये बैठी हैं। इस अभागी में ही ऐसा कौन–सा दोष है, जिसके कारण इसे कहीं हाथ–भर जगह तक नहीं मिल सकती? इसी तर्क–वितर्क के बीच में बिबिया की दादी आ पहुँची और धुँधली आँखों को फटे आँचल के कोने से रगड़–रगड़ कर पोती के दुर्भाग्य की कथा सुना गई।

बिबिया के नवीन पति की दो पत्नियाँ मर चुकी थीं। पहली अपनी स्मृति के रूप में एक–एक पुत्र छोड़ गई थी, जो नई विमाता के बराबर या उससे चार–छः मास बड़ा ही होगा। दूसरी की धरोहर तीन लड़कियाँ हैं, जिनमें बड़ी नौ वर्ष की और सबसे छोटी तीन वर्ष की होगी। झनकू ने छोटे बच्चों के लिए ही तीसरी बार घर बसाया था। वधू के प्रति भी उसका कोई विशेष अनुराग है, यह उसके व्यवहार से प्रकट नहीं होता था। वह सबेरे ही लादी लेकर और रोटी बाँधकर घाट चला जाता और सन्ध्या समय लौटता। फिर शाम को गठरी उतार कर और गधे को चरने के लिए छोड़ कर घर से निकलता तो ग्यारह बजे से पहले लौटने का नाम न लेता।

सुना जाता था कि उसका अधिकांश समय उसी पासी–परिवार में बीतता है, जिसके साथ उसकी घनिष्ठता के संबंध में विविध मत थे। जाति–भेद के कारण वह उस परिवार के साथ किसी स्थायी संबंध में नहीं बँध सका था और अपनी अभियोगहीन पत्नियों और अपने अच्छे स्वभाव के कारण पंच–परमेश्वर के दण्ड–विधान की सीमा से बाहर रह गया था।

पासी शहर में किसी सम्पन्न गृहस्थ का साईस हो गया था, पर उसकी घरवाली के हृदय में सास–ससुर के घर के प्रति अचानक ऐसी ममता उमड़ आई कि वह उस देहरी को छोड़कर जाना अधर्म की पराकाष्ठा मानने लगी। झनकू को अपने लिए न सही पर अपनी संतान की देख–रेख के लिए तो एक सजातीय गृहिणी की आवश्यकता थी ही, किन्तु कोई धोबन उसकी संगिनी बनने का साहस न कर सकी। रजक–समाज में बिबिया की स्थिति कुछ भिन्न थी। वह बेचारी अपकीर्ति के समुद्र में इस तरह आकण्ठ मग्न थी कि झनकू का प्रस्ताव उसके लिए जहाज बन गया।

इस प्रकार अपने मन को मुक्त रख कर भी झनकू ने बिबिया को दाम्पत्य– बंधन में बाँध लिया। यह सत्य है कि वह नई पत्नी को कोई कष्ट नहीं देता था। उसे घाट ले जाना तक झनकू को पसन्द नहीं था, इसी से कूटना, पीसना, रोटी–पानी, बच्चों की देखभाल में ही गृहिणी के कौशल की परीक्षा होने लगी। बिबिया पति के उदासीन आदर–भाव से प्रसन्न थी या अप्रसन्न, यह कोई कभी न जान सका, क्योंकि उसने घर और बच्चों में तन–मन से रम कर अन्य किसी भाव के आने का मार्ग ही बन्द कर दिया था। सवेरे से आधी रात तक वह काम में जुटी रहती। फिर छोटी बालिकाओं में से एक को दाहिनी और दूसरी को बाईं ओर लिटाकर टूटी खटिया पर पड़ते ही संसार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाती। सवेरा होने पर कर्तव्य की पुरानी पुस्तक का नया पृष्ठ खुला ही रहता था।

कच्चे घर में दो कोठरियाँ थीं, जिनके द्वार ओसारे में खुलते थे। इन कोठरियों को भीतर से मिलाने वाला द्वार कपाटहीन था। झनकू एक कोठरी में ताला लगा जाता था, जिससे रात में बिना किसी को जगाये भीतर आ सके। पत्नी उसके लिए रोटियाँ रखकर सो जाती थी। भूखा लौटने पर वह खा लेता था, अन्यथा उन्हीं को बाँधकर सवेरे घाट की ओर चल देता था।

बिबिया के स्नेह के भूखे हृदय ने मानो अबोध बालकों की ममता से अपने–आपको भर लिया। नहलाना, चोटी करना, खिलाना, सुलाना आदि बच्चों के कार्य वह इतने स्नेह और यत्न से करती थी कि अपरिचित व्यक्ति उसे माता नहीं, परम ममतामयी माता समझ लेता था। सन्तान के पालन की सुचारु व्यवस्था देखकर झनकू घर की ओर से और भी अधिक निश्चिन्त हो गया। नाज के घड़े खाली न होने देने की उसे जितनी चिन्ता थी, उतनी पत्नी के जीवन की रिक्तता भरने की नहीं।

यह क्रम भी बुरा नहीं था, यदि उसका बड़ा लड़का ननसार से लौट न आता। माँ के अभाव और पिता के उदासीन भाव के कारण वह एक प्रकार से आवारा हो गया था। तेल लगाना, कान में इत्र का फाहा खोंसना, तीतर लिये घूमना, कुश्ती लड़ना आदि उसके स्वभाव की ऐसी विचित्रताएँ थीं, जो रजक–समाज में नहीं मिलतीं।

धोबी जुआ खेलकर या शराब पीकर भी, न भले आदमी की परिभाषा के बाहर जाता है और न अकर्मण्यता या आलस्य को अपनाता है। उसे आजीविका के लिए जो कार्य करना पड़ता है, उसमें आलस्य या बेईमानी के लिए स्थान नहीं रहता। मजदूर, मजदूरी के समय में से कुछ क्षणों का अपव्यय करके या खराब काम करके बच सकता हैय पर धोबी ऐसा नहीं कर पाता।

उसे ग्राहक को कपड़े ठीक संख्या में लौटाने होंगे, उजले धोने में पूरा परिश्रम करना पड़ेगा, कलफ–इस्त्री में औचित्य का प्रश्न न भूलना होगा। यदि वह इन सब कामों के लिए आवश्यक समय का अपव्यय करने लगे, तो महीने में चार खेप न दे सकेगा और परिणामतः जीविका की समस्या उग्र हो उठेगी। सम्भवतः इसी से कर्मतत्परता ऐसी सामान्य विशेषता है, जो सब प्रकार के भले–बुरे धोबियों में मिलती है। उसकी मात्रा में अन्तर हो सकता हैय पर उसका नितान्त अभाव अपवाद है।

झनकू का लड़का भीखन ऐसा ही अपवाद था। पिता ने

महादेवी वर्मा

प्रयत्न करके एक गरीब धोबिन की बालिका से उसका गठबन्धन कर दिया था, किन्तु जामाता को सुधरते न देख उसने अपनी कन्या के लिए दूसरा कर्मठ पति खोजकर उसी के साथ गौने की प्रथा पूरी कर दी। इस प्रकार भीखन गृहस्थ भी न बन सका, सद्गृहस्थ बनने की बात तो दूर रही। पिता स्वयं इस स्थिति में नहीं था कि पुत्र को उपदेश दे सकता पर अन्त में उसके व्यवहार से थककर उसने उसे निर्वासन का दण्ड दे डाला। इस प्रकार विमाता के आने के समय वह नाना–नानी के घर रहकर तीतर लड़ाने और पतंग उड़ाने में विशेषज्ञता प्राप्त कर रहा था। पिता ने उसे नहीं बुलाया, पर विमाता की उपस्थिति ने उसे लौटने के लिए आकुल कर दिया।

एक दिन उसने डोरिया का कुरता और नाखूनी किनारे की धोती पहनकर बड़े यत्न से बुलबुलीदार बाल संवारे। तब एक हाथ में तीतर का पिंजड़ा और दूसरे में, बहिनों के लिए खरीदी हुई लइया–करारी की पोटली लिये हुए वह द्वार पर आ खड़ा हुआ। पिता घर नहीं थाय पर विमाता ने सौतेले बेटे के स्वागत–सत्कार में त्रुटि नहीं होने दी। लोटे भर पानी में खाँड़ घोलकर उसे शर्बत पिलाया, दाल के साथ बैंगन का भर्ता बनाकर रोटी खिलाई और दूसरी कोठरी में खटिया बिछाकर उसके विश्राम की व्यवस्था कर दी। पिता–पुत्र का साक्षात स्नेह–मिलन नहीं हो सका, क्योंकि एक ओर अनिश्चित आशंका थी और दूसरी ओर निश्चित अवज्ञा।

झनकू ने उसे स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि भलेमानस के समान न रहने पर वह उसे तुरन्त निकाल बाहर करेगा। भीखन ने ओठ बिचका, आँख मिचका और अवज्ञा से मुख फेरकर पिता का आदेश सुन लिया, पर भलेमानस बनने के सम्बन्ध में अपनी कोई स्वीकृति नहीं दी।

चरित्रहीन व्यक्ति दूसरों पर जितना सन्देह करता है, उतना सच्चरित्र नहीं। झनकू भी इसका अपवाद नहीं था। अब तक जिस पत्नी के लिए उसने रत्ती भर चिन्ता कष्ट नहीं उठाया, उसी की पहरेदारी का पहाड़ सा भार वह सुख से ढोने लगा। समय पर घर लौट आता, पुत्र पर कड़ी दृष्टि रखता और पत्नी के व्यवहार में परिवर्तन खोजता रहता, पर पिता की सतर्कता की अवज्ञा करके पुत्र विमाता के आसपास मंडराता रहता। जहाँ वह बर्तन मांजती, वहीं वह तीतर चुगाने बैठ जाता। जब वह कपड़े सुखाती, तभी बाहर नंगे बदन बैठकर मांसल हाथ–पैरों में तेल मलता। जिस समय वह पानी का घड़ा भरकर लौटती, उसी समय वह महुए के छतनार वृक्ष की ओट में छिपकर गाता 'धीरै–चलौ गगरी छलक ना जाय।'

एक दिन रोटी खाते समय उसकी सरसता इस सीमा तक पहुँच गई कि विमाता जलती लुआठी चूल्हे से खींचकर बोली "हम तोहार बाप कर मेहरारू अही। अब भाखा–कुभाखा सुनब तो तोहार पिठिया के चमड़ी न बची।"

विमाता के इस अभूतपूर्व व्यवहार से पुत्र लज्जित न होकर क्रुद्ध हो उठा। इस प्रकार के पुरुषों को अपनी नारी–मोहिनी विद्या का बड़ा गर्व रहता है। किसी स्त्री पर उस विद्या का प्रभाव न देखकर उनके दम्भ को ऐसा आघात पहुँचता है कि वे कठोर प्रतिशोध लेने में भी नहीं हिचकते। विमाता के उपदेश की प्रतिक्रिया ने एक अकारण द्वेष को अंकुरित करके उसे पनपने की सुविधा दे डाली।

जहाँ तक बिबिया का प्रश्न था, वह पति के व्यवहार से विशेष सन्तुष्ट न होने पर भी उससे रुष्ट नहीं थी। अभिमानी व्यक्ति अवज्ञा के साथ मिले हुए अधिक स्नेह का तिरस्कार कर वीतरागता के साथ आदर–भाव को स्वीकार कर लेता है। झनकू ने पत्नी में अनुराग न रखने पर भी अन्य धोबियों के समान उसका अनादर नहीं किया। भीखन के व्यवहार में अब विमाता के प्रति ऐसा कृत्रिम घनिष्ठ भाव व्यक्त होने लगा कि वह आतंकित हो उठी। घर की शान्ति न भंग करने के विचार से ही उसने गृहस्वामी के निकट कोई अभियोग नहीं उपस्थित किया, पर अपने मौन के कठोर

परिणाम तक उसकी दृष्टि नहीं पहुँच सकी।

पुत्र दूसरों के सामने विमाता की चर्चा चलते ही एक विचित्र लज्जा और मुग्धता का अभिनय करने लगा और उसके साथी उन दोनों के सम्बन्ध में दन्तकथाएँ फैलाने लगे। घरों में धोबिनें, बिबिया के छल–छन्द की नीचता और अपने पतिव्रत की उच्चता पर टीका–टिप्पणी करके पतियों से हँसुली– कड़े के रूप में सदाचार के प्रमाण–पत्र माँगने लगीं। घाट पर झनकू की श्रवणसीमा में बैठकर धोबी अपने–आपको त्रियाचरित्र का ज्ञाता प्रमाणित करने लगे।

पत्नी के अनाचार और अपनी कायरता का ढिंढोरा पिटते देखकर झनकू का धैर्य सीमा तक पहुँच गया, तो आश्चर्य नहीं। एक दिन जब वह घाट से भरा हुआ लोटा ला रहा था, तब मार्ग में लड़का मिल गया। बस झनकू ने आव देखा न ताव गधा हाँकने की लकड़ी से ही वह उसकी मरम्मत करने लगा। पुत्र ने सारा दोष विमाता पर डालकर अपनी विवशता का रोना रोया और अपने दुष्कृत्य पर लज्जित होने का स्वांग रचा। इस प्रकार भीखन का प्रतिशोध–अनुष्ठान पूरा हुआ।

झनकू यदि चाहता, तो पत्नी से उत्तर माँग सकता था, पर उसे उसके दोष इतने स्पष्ट दिखाई देने लगे कि उसने इस शिष्टाचार की आवश्यकता ही नहीं समझी। बिबिया ने एक बार भी गहने–कपड़े के लिए हठ नहीं किया, वह एक दिन भी पति की स्नेहपात्री को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारने नहीं गई और वह कभी पति की उदासीनता का विरोध करने के लिए कोप–भवन में नहीं बैठी। इन त्रुटियों से प्रमाणित हो जाता था कि वह पति में अनुराग नहीं रखती और जो अनुरक्त नहीं, वह विरक्त माना जायेगा। फिर जो एक ओर विरक्त है, उसके किसी दूसरे ओर अनुरक्त होने को लोग अनिवार्य समझ बैठते हैं। इस तर्क–क्रम से जो दोषी प्रमाणित हो चुका हो, उसे सफाई देने का अवसर देना पुरस्कृत करना है। उसके लिए सबसे उत्तम चेतावनी दण्ड–प्रयोग ही हो सकता है।

उस रात प्रथम बार बिबिया पीटी गई। लात, घूँसा, थप्पड़, लाठी आदि का सुविधानुसार प्रयोग किया गया, पर अपराधिनी ने न दोष स्वीकार किया, न क्षमा माँगी और न रोई–चिल्लाई। इच्छा होने पर बिबिया लात–घूँसे का उत्तर बेलन–चिमटे से देने का सामर्थ्य रखती थी, पर वह झनकू का इतना आदर करने लगी थी कि उसका हाथ न उठ सका।

पत्नी के मौन को भी झनकू ने अपराधों की सूची में रख लिया और मारते–मारते थक जाने पर उसे ओसारे में ढकेल और किवाड़ बन्द कर वह हाँफता हुआ खाट पर पड़ा रहा।

बिबिया के शरीर पर घूँसों के भारीपन के स्मारक गुम्मड़ उभर आये थे, लकड़ी के आघातों की संख्या बताने वाली नीली रेखाएँ खिंच गई थीं और लातों की सीमा नापने वाली पीड़ा जोड़ों में फैल रही थी। उस पर द्वार का बन्द हो जाना उसके लिए क्षमा की परिधि से निर्वासित हो जाना था। वह अन्धकार में अदृष्ट की रेखा जैसी पगडंडी पर गिरती–पड़ती, रोती–कराहती अपने नैहर की ओर चल पड़ी। झनकू को पति का कर्तव्य सिखाने के लिए कभी एक पंच–देवता भी आविर्भूत नहीं हुए, पर बिबिया को कर्तव्यच्युत होने का दण्ड देने के लिए पंचायत बैठी। भीखन ने विमाता के प्रलोभनों की शक्ति और अपनी अबोध दुर्बलता की कल्पित कहानी दोहरा कर क्षमा माँगी। इस क्षमा–याचना में जो कोर–कसर रह गई, उसे उसके मामा, नाना आदि के रुपयों ने पूरा कर दिया।

दूसरे की दुर्बलता के प्रति मनुष्य का ऐसा स्वाभाविक आकर्षण है कि वह सच्चरित्र की त्रुटियों के लिए दुश्चरित्र को भी प्रमाण मान लेता है। चोर ईमानदारी का उपयोग नहीं जानता, झूठा सत्य के प्रयोग से अनभिज्ञ रहता है। किसी गुण से अनभिज्ञ या उसके संबंध में अनास्थावान मनुष्य यदि उस विशेषता से युक्त व्यक्ति का विश्वास न करे, तो स्वाभाविक ही है, पर उसकी भ्रान्त धारणा भी प्रायः समाज में प्रमाण मान ली जाती है, क्योंकि मनुष्य किसी को दोष–रहित नहीं स्वीकार करना चाहता और दोषों के अथक अन्वेषक दोषयुक्तों की श्रेणी में ही मिलते हैं। बिबिया पर लांछन लगाने वाले भीखन के आचरण के संबंध में किसी को भ्रम नहीं था, पर बिबिया के आचरण में त्रुटि खोजने के लिए उसकी स्वीकारोक्ति को सत्य मानना अनिवार्य हो उठा। वह अपने अभियोग को सफाई देने के लिए नहीं पहुँच सकी।

बिबिया की दादी मर चुकी थी, पर भाई चिर दुःखिनी बहिन को घर से निकाल देने का साहस न कर सका, इसी से बिरादरी में उसका हुक्का–पानी बंद हो गया। इसी बीच ज्वर के कारण मुझे पहाड़ जाना पड़ा। जब कुछ स्वस्थ होकर लौटी, तब बिबिया की खोज की। पता चला कि वह न जाने कहाँ चली गई और बहिन की कलंक–कालिमा से लज्जित भाई ने परताबगढ़ जिले में जाकर अपने ससुर के यहाँ आश्रय लिया। बहिन से छुटकारा पाकर कन्हई खिन्न हुआ या नहीं, इसे कोई नहीं बता सका, पर सरपंच ससुर की कृपा से वह बिरादरी में बैठने का सुख पा सका, इसे सब जानते थे।

गाँव का रजक–समाज बिबिया के संबंध में एकमत नहीं था। कुछ उसके आचरण में विश्वास रखने के कारण उसके प्रति कठोर थे और कुछ उसकी भूलों को भाग्य का अमिट विधान मानकर सहानुभूति के दान में उदार थे। एक वृद्धा ने बताया कि भाई का हुक्का–पानी बंद हो जाने पर वह बहुत खिन्न हुई। फिर बिरादरी में मिलने के लिए दो सौ रुपये खर्च करने पड़ते, पर इतना तो कन्हई जनम भर कमा कर भी नहीं जोड़ सकता था।

इन्हीं कष्ट के दिनों में भतीजे ने जन्म लिया। भौजाई वैसे ही ननद से प्रसन्न नहीं रहती थी। अब तो उसे सुना– सुनाकर अपने दुर्भाग्य और पति की मन्द बुद्धि पर खीजने लगी। 'का हमरेउ फूटे कपार मा पहिल पहिलौठी सन्तान का उछाह लिखा है? हम कौन गहरी गंगा माँ जौ बोवा है जौन आज चार जात–बिरादर

महादेवी वर्मा

दुवारे मुँह जुठारैं? पराये पाप बरे हमार घर उजड़िगा। जिनकर न घर न दुवार उनका का दुसरन कै गिरिस्ती बिगारै का चही? सरमदारन के बरे तौ चिल्लू भर पानी बहुत है।'

इस प्रकार की सांकेतिक भाषा में छिपे व्यंग सुनते–सुनते एक दिन बिबिया गायब हो गई। सबको उसके बुरे आचरण पर इतना अडिग विश्वास था कि उन्होंने उसके इस तरह अन्तर्धान हो जाने को भी कलंक मान लिया। वह अच्छी गृहस्थिन नहीं थी, अतः किसी के साथ कहीं चले जाने के अति. रिक्त वह कर ही क्या सकती थी। मरना होता तो पहले पति से परित्यक्त होने पर ही डूब मरती, नहीं तो दूसरे के घर ही फाँसी लगा लेती, पर निर्दोष भाई के घर आकर और उसकी गृहस्थी को उजाड़कर वह मर सकती है, यह विचार तर्कपूर्ण नहीं था।

त्रिया–चरित्र जानना वैसे ही कठिन है, फिर जो उसमें विशेषज्ञ हो उसकी गतिविधि का रहस्य समझने में कौन पुरुष समर्थ हो सकता है! गाँव के किसी पुरुष से वह कोई सम्पर्क नहीं रखती, इसी एक प्रत्यक्ष ज्ञान के बल पर अनेक अप्रत्यक्ष अनुमानों को कैसे मिथ्या ठहराया जावे! निश्चय ही बिबिया ने किसी के बिना जाने ही अपनी अज्ञात यात्रा का साथी खोज लिया होगा।

बहुत दिनों के उपरान्त जब मैं एक वृद्ध और रोगी पासी को दवा देने गई, तब बिबिया के यात्रा–संबंधी रहस्य पर कुछ प्रकाश पड़ा। उसने बताया कि भागने के दो दिन पहले बिबिया ने उससे ठर्रे का एक अद्धा मँगवाया था। रुपया धेली गाँठ में न होने के कारण उसने माँ की दी हुई चाँदी की तरकी कान से उतार कर उसके हाथ पर रख दी। धोबिनों में वही इस लत से अछूती थी, इसी से पासी आश्चर्य में पड़ गयाय पर प्रश्न करने पर उसे उत्तर मिला कि भतीजे के नामकरण के दिन वह परिवार वालों की दावत करेगी। भाई को पता चल जाने पर वह पहले ही पी डालेगा, इसी से छिपाकर मँगाना आवश्यक है।

दूसरे दिन पासी ने छन्ने में लपेटा हुआ अद्धा देकर शेष रुपये लौटाये, तब उसने रुपयों को उसी की मुट्ठी में दबाकर अनुनय से कहा कि अभी वही रखे तो अच्छा हो। आवश्यकता पड़ने पर वह स्वयं माँग लेगी। गाँव की सीमा पर खेलती हुई कई बालिकाओं को, उसका मैले कपड़ों की छोटी गठरी लेकर यमुना की ओर जाते–जाते ठिठकना, स्मरण है। एक गड़ेरिये के लड़के ने सन्ध्या समय उसे चुल्लू से कुछ पी–पीकर यमुना के मटमैले पानी से बार–बार कुल्ला करते और पागलों के समान हँसते देखा था।

तब मेरे मन में अज्ञातनामा संदेह उमड़ने लगा। यात्रा का प्रबंध करने के लिए तो कोई बेहोश करने वाले पेय को नहीं खरीदता। यदि इसकी आवश्यकता ही थी, तो क्या वह सहयात्री नहीं मँगा सकती थी, जिसके अस्तित्व के सम्बन्ध में गाँव भर को विश्वास है?

बिबिया को अपनी मृत माँ का अन्तिम स्मृति–चिह्न बेचकर इसे प्राप्त करने की कौन–सी नई आवश्यकता आ पड़ी? फिर बाहर जाने के लिए क्या उसके पास इतना अधिक धन था कि उसने तरकी बेचकर मिले रुपये भी छोड़ दिये।

कगार तोड़कर हिलोरें लेने वाली भदहीं यमुना में तो कोई धोबी कपड़े नहीं धोने जाता। वर्षा की उदारता जिन गड्ढों को भर कर पोखर–तलइया का नाम दे देती है, उन्हीं में धोबी कपड़े पछार लाते हैं। तब बिबिया ही क्यों वहाँ गई?

इस प्रकार तर्क की कड़ियाँ जोड़– तोड़कर मैं जिस निष्कर्ष पर पहुँची, उसने मुझे कँपा दिया। आत्मघात, मनुष्य की जीवन से पराजित होने की स्वीकृति है। बिबिया–जैसे स्वभाव के व्यक्ति पराजित होने पर भी पराजय स्वीकार नहीं करते। कौन कह सकता है कि उसने सब ओर से निराश होकर अपनी अन्तिम पराजय को भूलने के लिए ही यह आयोजन नहीं किया? संसार ने उसे निर्वासित कर दिया, इसे स्वीकार करके और गरजती हुई तरंगों के सामने आँचल फैलाकर क्या वह अभिमानिनी स्थान की याचना कर सकती थी?

मैं ऐसी ही स्वभाववाली एक सम्भ्रान्त कुल की निःसन्तान, अतः उपेक्षित वधू को जानती हूँ, जो सारी रात द्रौपदीघाट पर घुटने भर पानी में खड़ी रहने पर भी डूब न सकी और ब्रह्म मुहूर्त में किसी स्नानार्थी वृद्ध के द्वारा घर पहुँचाई गई। उसने भी बताया था कि जीवन के मोह ने उसके निश्चय को डाँवा डोल नहीं किया। 'कुछ न कर सकी तो मर गई' दूसरों के इसी विजयोद्गार की कल्पना ने उसके पैरों में पत्थर बाँध दिए और वह गहराई की ओर बढ़ न सकी।

फिर बिबिया तो विद्रोह की कभी राख न होने वाली ज्वाला थी। संसार ने उसे अकारण अपमानित किया और वह उसे युद्ध की चुनौती न देकर भाग खड़ी हुई, यह कल्पना–मात्र उसके आत्मघाती संकल्प को, बरसने से पहले आँधी में पड़े हुए बादल के समान कहीं–का–कहीं पहुँचा सकती थी। पर संघर्ष के लिए उसके सभी अस्त्र टूट चुके थे। मूर्छितावस्था में पहाड़–सा साहसी भी कायरता की उपाधि बिना पाये हुए ही संघर्ष से हट सकता है।

संसार ने बिबिया के अन्तर्धान होने का होने का जो कारण खोज लिया, वह संसार के ही अनुरूप है, पर मैं उसके निष्कर्ष को निष्कर्ष मानने के लिए बाध्य नहीं। आज भी जब मेरी नाव, समुद्र का अभिनय करने में बेसुध वर्षा की हरहराती यमुना को पार करने का साहस करती है, तब मुझे वह रजक–बालिका याद आये बिना नहीं रहती।

उपासना झा

उपासना झा बिहार के गोपालगंज से हैं। वे नई पीढ़ी की सुपरिचित कवयित्री हैं। उपासना पूर्व मीडियाकर्मी भी हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख, कहानियाँ-कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं। पिछले कुछ समय में उपासना झा की कविताओं, कहानियों ने हिंदी के पाठकों, लेखकों, आलोचकों सभी को समान रूप से आकर्षित किया है। कविताओं में संवेदनशीलता जितनी अधिक होती है, शब्दों का सौन्दर्य उतना ही बढ़ जाता है। उपासना झा की कविताओं में बहुत गहरी तल्लीनता है जो अपने साथ पढ़ने वाले को लिए जाती है और उदास एकांत में छोड़ जाती है।

उपासना झा

ग्यारह बरस की मां

उसे नहीं भाती देर रात
शिशु की रुलाई
उठते डर लगता है उसे कम रौशनी में
अचानक उसकी टूटती है नींद
माघ की ठंड में उसकी गात है
पसीने से धुली हुई

एक क्षण को कभी
मन में उठता है दुलार
उमगती है नसों में एक पवित्र अनुभूति
अवयस्क उसकी छातियों में
उतरता है दूध
लेकिन ये क्षण भीषण अंधकार को
पाट नहीं पाते

उसके सपनों में परियाँ नहीं आती
उसकी किताबें हैं
बोरी में बन्द, दुछत्ती पर धरी हुई
छोटे भाई की किताबों को
देखती है छूकर
सोचती है कि स्कूल जाना
उसे इतना तो नापसन्द न था

नहीं आती उसकी सहेलियाँ अब घर
गुड्डे–गुड़ियों की बारात में
उसकी अब कोई जरूरत नहीं
न छुप्पमछुपाई में अब उसकी डाक होती है
उसे कर दिया गया है निर्वासित
जीवन के सभी सुखों से

दादी अब नहीं देती उसे मीठी गालियाँ
पिता कि आँखों में सूनेपन के सिवा कुछ नहीं
चाचा के गुस्से की जगह
आ बैठा है डबडबाया हुआ पछतावा
क्यों नहीं रखा उन्होंने उसका ध्यान
माँ को बोलते अब कोई सुनता

उसे नहीं धोने इस शिशु के पोतड़े
उसे खेतों में फूली मटर
और सरसों के पीले फूल बुलाते हैं
लेकिन यह अब किसी और ही
युग की बात लगती हो जैसे
उसे डर लगता है शंकित आँखों
और हर तरफ फुसफुसाहटों से

इस घर में शिशु–जन्म
ऐसा शोक है, जिसमें यह घर है संतप्त
यह शिशु है अवांछनीय, अस्वीकृत
हर दिन यह परिवार कुछ और ढहता है
देश का अंधा कानून आत्ममुग्ध है
अपने अँधेरे कमरे की फर्श पर बैठी
यह ग्यारह बरस की माँ
किसी से कुछ पूछ भी नहीं पाती...

बिहार सरकार

Centre for Catalyzing Change

कार्यस्थल पर आंतरिक समिति एवं जिला स्तर पर स्थानीय समिति है जरूरी

प्रत्येक कार्यस्थल पर एक समिति गठित करना आवश्यक है ।

अगर संगठन में कोई महिला नहीं है तो ?

वहाँ समिति का गठन हेतु अन्य कार्यालयों अथवा कार्यस्थल की प्रशासनिक इकाईयों से पीठासीन अधिकारी मनोनीत किया जायेगा। यदि कार्यस्थल के अन्य कार्यालयों या प्रशासनिक इकाइयों में वरिष्ठ स्तर की महिला कर्मचारी नहीं है, तो पीठासीन अधिकारी को उसी नियोक्ता के अन्य विभाग या संस्था या किसी अन्य कार्यस्थल से नामित किया जाएगा।

आंतरिक समिति (आईसी)

प्रत्येक संगठन/विभाग को कम से कम पांच सदस्यों वाली एक आंतरिक समिति (आईसी) का गठन करना अनिवार्य है| इस समिति की अध्यक्ष संगठन/विभाग मे वरिष्ठ स्तर पर कार्यरत महिला होगी। इस समिति के आधे सदस्य महिलायें होगीं और एक बाहरी सदस्य होंगे किसी एनजीओ से विशेषकर जो महिलाओं के मुद्दों/ या उनकी बेहतरी के लिए कार्य करते हो या जिनके पास सामाजिक कार्य का अनुभव हो या कानूनी ज्ञान हो ।

स्थानीय समिति (एलसी)

राज्य सरकार हर जिले में जिलाधिकारी/ अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर/ डिप्टी कलेक्टर को जिला अधिकारी के रुप में अधिसूचित करेगी, जो एक स्थानीय समिति (एलसी) का गठन करेंगे ताकि असंगठित क्षेत्र या छोटे प्रतिष्ठानों में महिलाओं को एक यौन उत्पीड़न से मुक्त वातावरण में काम करने का अवसर मिल सके।

किसी विशेष जिले में एलसी का पता लगाने के लिए

- जिला पदाधिकारी कार्यालय से सम्पर्क करें
- अपने जिले/राज्य में कार्यरत वन स्टॉप सेंटर/महिला हेल्पलाइन (181, 100 आदि के माध्यम से टोल फ्री) से संपर्क करें
- राज्य महिला आयोग से संपर्क करें
- राज्य के महिला एवं बाल विकास विभाग/महिलाओं के मुद्दों की देखभाल करने वाले विभाग से संपर्क करें

संगठन/जिले में आईसी/ एलसी का गठन न करने पर रु. 50,000/- जुर्माने का दंड है

बार-बार समिति का गठन नहीं करके नियम का उल्लंघन करने वालों को व्यावसायिक गतिविधियों को करने के लिए आवश्यक लाइसेंस/पंजीकरण को रद्द करके /वापस लेकर दंडित किया जाएगा।

बराबरी और सम्मान,

हो हर कार्यस्थल की पहचान

www.emanjari.com

मंजरी

स्त्री के मन की

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है। प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का अन्यत्र इस्तेमाल करना कॉपीराइट का उल्लंघन माना जाएगा।

RNI Title Code: BIHBIL02442

© इक्विटी फाउंडेशन